रचयिता एवं रचना



विद्यालय के प्राचार्य पद पर रह कर न्याय, व्याकरण साहित्य आदि समग्र शास्त्रों के जिज्ञासु छात्रों को अपनी वाणी-सुधा-रस-धार से तृप्त पारगत किया। साथ ही दस साल तक महेसाणा के टी० जे० हाई स्कूल में सहायक शिक्षक के रूप में भी रहे। यहाँ से अवकाश प्राप्त होने के पश्चात् जीवन के शेष दिवस उन्होंने नडियाद में व्यतीत किया। और वहीं १३ नवम्बर १९६५ में अपनी पाँच पुत्रियों को छोड़कर दिवगत हो गये।

श्री याज्ञिक जी की संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रति विशेष अभिरुचि थी। अध्यवसाय और मनन के परिणामस्वरूप उसके अधिकारी विद्वान् हुए यही कारण था कि उनकी विद्वत्ता से आकृष्ट होकर बडौदा नरेश महाराज सयाजीराव ने प्रसिद्ध संस्कृत कालेज के प्राचार्य-पद पर आसीन किया था। एवं वाराणसी के विद्वद्समाज ने उन्हें 'साहित्यमणि' की मानद उपाधि से विभूषित किया। सरस्वती और लक्ष्मी के जन्मजात विरोध के कारण श्री याज्ञिक जी को जीवन-पर्यन्त निर्धनता से संघर्ष करना पड़ा। तथापि साहित्य-रचना की उत्कट अभिलाषा के फलस्वरूप उन्होंने गुर्जर तथा संस्कृत साहित्य को अपनी कृतियों से समृद्ध किया। गुर्जर प्रदेश के साहित्य सर्जकों की दृष्टि नाटक रचना की ओर नहीं गयी थी, श्री याज्ञिक जी ने अपनी कृतियों से साहित्यिकों को आकर्षित कर दिया और साहित्य-समाज में एक नयी परम्परा का श्री गणेश हुआ। उनके पश्चात् अन्य कई नाटककारों का प्रादुर्भाव भी हुआ। इनकी संस्कृत कृतियाँ—

१. छत्रपतिसाम्राज्यम् २. संयोगितास्वयम्वरम्

३ प्रतापविजयम् और गुर्जर भाषा की कृतियाँ—

१. हर्षदिग्विजयम् (नाटक) २. नैषधचरितम्

३. तुलनात्मक धर्म विचार ४ आपणुं प्राचीन राजतन्त्र

५. (गुजराती धर्म सहित) सत्यधर्म प्रकाश। इसके अतिरिक्त विष्णुपुराण पर आधारित 'पुराणकथातरंगिणी' नामक एक कथा

पुस्तक भी उन्होने संस्कृत में लिखी थी। गुजराती में भी एक प्रकृति 'मेवाडप्रतिष्ठा' है।

संस्कृत की नाट्यकृतियाँ उनके संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्यत्व-काल (१९२६-१९३३) में ही प्रकाश में आ गयी थी। क्रमानुसार सन् १९२८ में 'संयोगितास्वयम्वरम्' १९२९ में 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' और १९३१ में 'प्रतापविजयम्' का प्रकाशन हुआ। नाटकों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

संयोगितास्वयम्वरम्—इसमें प्रसिद्ध हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान और राजकुमारी संयोगिता की प्रणय-कथा निबद्ध है। छत्रपति-साम्राज्यम—इसमें महाराष्ट्र केसरी छत्रपति शिवाजी के जीवन और उनके शौर्यपूर्ण कार्यों एवं तत्कालीन यवन सम्राट् की दुर्नीति के विरुद्ध संघर्ष और अन्त में स्वराज्यस्थापना की घटनाओं को आबद्ध किया गया है। प्रतापविजयम्— जैसा कि नाम से ही आभासित है, इस नाटक में मेवाड केसरी महाराणाप्रताप सिंह का जीवन प्रसंग उल्लिखित है। यह याज्ञिक जी की नाट्यकृतियों का संक्षिप्त परिचय है। अब हम आगे 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' नाटक के स्वरूप पर नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों तथा सीमाओं को ध्यान में रखते हुए विचार करेंगे।

नाट्यस्वरूप-मीमांसा एवं छत्रपति साम्राज्यम्

यह याज्ञिक जी की द्वितीय नाट्यकृति है। इसके पूर्व संयोगिता-स्वयम्वरम्' प्रकाशित एवं विद्वानों द्वारा प्रशंसित हो चुका था। अतः इस द्वितीय कृति की उत्कृष्टता के विषय में सन्देह नहीं किया जा सकता। सर्वप्रथम हम नाट्यशास्त्रियों द्वारा निरूपित नाट्य लक्षणों पर विचार करें—'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् (दशरूपक—१)—'अवस्था की अनुकृति को नाट्य कहते हैं, दृश्य होने के कारण इसे रूप भी कहते हैं, रूप का आरोप हो जाने से 'रूपक' भी इसकी संज्ञा है, और रस के आश्रय से होने वाले दस भेद हैं। दशरूपककार के अनुसार वे दस

नाटक की कथा वस्तु किसी न किसी इतिहास प्रसिद्ध कथानक पर आधारित होनी चाहिए।[1] जैसा कि दशरूपककार ने नाटक के विषय मे निरूपित करते हुए उल्लेख किया है—'नाटक का नायक उत्कृष्ट कोटि के सेवन करने योग्य गुणो से युक्त, धीरोदात्त, प्रतापशाली, कीर्ति का अभिलाषी, अत्यन्त उत्साही, वेदत्रयी की मर्यादा का पोषक और रक्षक एवं प्रख्यात वंश मे उत्पन्न हो, अथवा कोई राजर्षि या दिव्य (स्वर्गीय) होना चाहिए। प्रख्यात वृत्त मे ऐसी वस्तु अथवा घटना जो नायक के चरित्र अथवा रस की दृष्टि से अनुचित हो, उसे छोड देना चाहिए या उसकी प्रस्तुति किसी प्रकार कल्पना के सहारे कर दे। सारी कथा-वस्तु को पाँच भागो मे विभाजित करके फिर उन पाँचों भागो को भी खण्डो मे विभक्त करना चाहिए। कथावस्तु के इन विभागो को सन्धि कहते हैं[2]। १ मुख-सन्धि—आरम्भ नामक अवस्था और 'बीज' अर्थ प्रकृति का जहाँ सयोग होता है। २ प्रतिमुख-सन्धि—प्रधान फल की साधिका कथा-वस्तु जहाँ कभी गुप्त और

---

१. अधिगम्य गुणैर्युक्तो धीरोदात्त प्रतापवान्।
कीर्तिकामो महोत्साहस्त्रय्यास्त्राता महीपति ॥
प्रख्यातवंशोराजर्षिर्दिव्यो वा यत्र नायक ।
तत्प्रख्यात विधातव्य वृत्तमत्राधिकारिकम्।
यत्तत्रानुचित किञ्चिन्नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्ध तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत्।
आद्यन्तमेव निश्चित्य पञ्चधा तद्विभज्य च।
खण्डश सन्धिसज्ञाश्च विभागानपि कल्पयेत् ॥
—दशरूपक। ३-२२-२५

२ अन्तरैकार्थसम्बन्ध सन्धिरेकान्वये सति।
मुख प्रतिमुख गर्भो विमर्श उपसं ति ॥
—सा० द०। परिच्छेद ६

कभी प्रकट होती प्रतीत हो। ३. गर्भ-सन्धि— प्रतिमुख-सन्धि का किञ्चित् प्राविर्भूत बीज बार-बार प्रकट, गुप्त और अन्वेषित होता रहता है। ४ विमर्श-सन्धि— जब बीज अर्थात् अर्थ प्रकृति के अधिक विस्तृत हो जाने के कारण, उसके फलोन्मुख होने में व्यवधान आता है, तो विमर्श-सन्धि होती है। ५ निर्वहण सन्धि— रूपक के समाप्त होते समय जहाँ पूर्व की सन्धियों तथा अवस्थाओं के अर्थों का समाहार होता है, निर्वहण-सन्धि की स्थिति होती है। इसके अतिरिक्त बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य पाँच अर्थ प्रकृतियाँ एवं पाँच अवस्थाएँ भी आवश्यक बतायी गयी हैं। पाँच अवस्थाएँ ये हैं[१]— १ आरम्भ— फल की प्राप्ति— हेतु जहाँ प्रथम बार उत्सुकता दिखायी पड़े २ प्रयत्न— कार्य-सिद्धि न होती दिखायी पड़ने पर तदर्थ जहाँ शीघ्रता-पूर्वक प्रयत्न किया जाय। ३ प्राप्त्याशा— प्रयत्न तथा विघ्न दोनों की स्थिति की अवस्था, जहाँ दोनों के कारण फलागम का निश्चय करना कठिन हो जाय। ४. नियताप्ति— जहाँ फल की प्राप्ति का पूर्णतया निश्चय हो जाय। ५. फलागम— उद्देश्य की पूर्णरूपेण प्राप्ति। वस्तुत कार्य कि इन पाँच अवस्थाओं का नाटक की कथा-वस्तु में भलीभाँति विन्यास करना रचनाकार की परम सफलता है।

अवस्था और सन्धि के अतिरिक्त नाटक की कथा-वस्तु के विन्यास और उसके पल्लवित होने के प्रसंग में अर्थ-प्रकृतियों का विशेष महत्व होता है। आधिकारिक कथा-वस्तु के विकास और उसके आद्योपान्त

---

१. अवस्था पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशा नियताप्ति फलागमः॥

—सा० द०। वही परिच्छेद

निर्वाह में ये ही परमावश्यक तत्व है। ये अर्थ-प्रकृतियाँ पाँच हैं[1]—
१ बीज—कार्य सिद्धि का हेतु जो प्रारम्भ में स्वल्पमात्रा में निर्दिष्ट नाटक के अग्रभाग में अनेकधा विस्तृत होकर पल्लवित होता है। २ बिन्दु—प्रधान कथा के अविच्छिन्न बनी रहते, जिसके द्वारा अवान्तर कथा आगे बढ़ती है, ऐसा कारण बनकर उपस्थित होनेवाला साधन बिन्दु कहलाता है। ३. पताका—वह प्रासंगिक कथा वस्तु जो नाटक में दूर तक चलती रहे। ४ प्रकरी—प्रासंगिक कथा-वस्तु के छोटे छोटे इतिवृत्तों को प्रकरी कहते है। ५ कार्य—जिस फल की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाता है और जो साध्य होता है, वह कार्य है।[2] यही नाटक का वस्तुतः प्रमुख और अन्तिम प्रयोजन है।

संस्कृत नाटकों में प्रधान कथा वस्तु के अतिरिक्त कुछ ऐसे कथानक, प्रसंग अथवा घटनाएं भी रचना के उद्देश्य की प्राप्ति में अनिवार्यतः सहायक होते हैं, परन्तु ये कथा के गठन में नहीं आते, ऐसे तथ्यों का अन्य प्रसंगों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, इन्हें

---

१ बीज बिन्दु पताका च प्रकरी कार्यमेव च।
अर्थप्रकृतयः पञ्च ज्ञात्वा योज्या यथाविधि ॥
—सा० द०।परि० ६

२ फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते।
अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम् ॥
व्यापि प्रासङ्गिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते।
प्रासङ्गिकं प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता ॥
—सा० द०।वही

स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा ;
अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम् ॥
सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक् ॥
—दशरूपक।प्रकाश-१

अर्थोपक्षेपक कहते है ।[1] इन अर्थोपक्षेपको का संयोजन स्थान, समय एवं घटना की एकता रखने के लिए आवश्यक है, क्योंकि संस्कृत नाटकों की समस्त कथावस्तु अंको में विभाजित रहती है, दृश्य विधान होता नही। इन अर्थोपक्षेपको की संख्या पाँच है[2]—१ विष्कम्भक—भविष्य में होने वाली अथवा भूतकाल की घटना अथवा कथा की सूचना मध्यमपात्रों द्वारा दी जाती है। २ प्रवेशक—इसमें होनेवाली अथवा बीती हुई कथा को निम्नश्रेणी के पात्रों द्वारा सूचित किया जाता है। ३ चूलिका—किसी रहस्य विशेष को नेपथ्य से सूचित किया जाता है। ४. अंकास्य—अंक की समाप्ति पर अग्रिमांक की प्रारम्भिक कथा का पात्रों द्वारा संकेत कर दिया जाता है। ५ अंकावतार—एक अंक को उस कथा का अंश जो कथा दूसरे अंक में चलती रहती है। इन अर्थोपक्षेपकों में से प्रथम, द्वितीय—विष्कम्भक और प्रवेशक का प्रयोग प्राय नाटकों में विशेषरूप से होता है और शेष का प्रयोग न के बराबर ही हुआ करता है।

---

१. अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पञ्चभिः प्रतिपादयेत् ।
विष्कम्भचूलिकाऽङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकैः ॥

—दशरूपक।

२ वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ॥
तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः ॥
अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना ।
अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात् ।
अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः ॥

—दशरूपक।प्रथम प्रकाश

नाटक की रचना शैली के सम्बन्ध मे भी आचार्यों ने भलीभाँति निरूपण किया है। नाट्य-रचना प्राय. चार वृत्तियो मे से किसी एक मे होती है। वे चार वृत्तियाँ ये हैं—कैशिकी, सात्वती, आरभटी और भारती। वृत्ति का निरूपण करते समय दशरूपककार ने लिखा है[१]—'नायक के कार्यों के अनुकूल व्यापार को वृत्ति कहते हैं।' (तद्व्यापारात्मिकावृत्ति —द्वितीय प्रकाश)। १. कैशिकी—कैशिकी नामक प्रथम वृत्ति उसे कहते हैं जो नृत्य, गीत, विलास इत्यादि शृंगारिक चेष्टाओ के सयोग से कोमल हो। २. सात्वती—यह वृत्ति प्राय· उन रूपको म होती है, जिनका नायक सत्व, शौर्य, दया और आर्जव आदि गुणो से युक्त हो। ३ आरभटी—यह वृत्ति उन रूपको मे होती है, जिनमें माया, इन्द्रजाल, सग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्ति आदि व्यापारों की सृष्टि हो। ४ भारती—जिन रूपको मे वाचिक अभिनय की अधिकता—दृश्यो, व्यापारो के अनुपात सवाद ही अधिक हो, वहाँ भारती वृत्ति होती है। अस्तु परम्परानुसार 'नाटक' और 'भाण' भारतीवृत्ति मे नाटिका 'कैशिकी' वृत्ति मे एव डिम 'आरभटी' वृत्ति मे लिखे जाते हैं। किन्तु यह एक सार्वभौम सिद्धान्त नही माना जा सकता। पुरातन काल मे प्रदेश विशेष म अपनी नाट्यविधा, रचना-प्रक्रिया का प्रचलन एव उनकी प्रतिष्ठा थी। तथापि इन वृत्तियों का शास्त्रीय विवेचन तथा वर्गीकरण का नाट्य-रचना मे

---

१ गीतनृत्यविलासाद्यै. मृदु. शृङ्गारचेष्टितै ॥
विशोका सात्वती सत्वशौर्यत्यागदयार्जवैः।
सलापोत्थापकावस्या साङ्घात्यः परिवर्तकः॥
मायेन्द्रजाल सङ्ग्राम क्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितै।
भारती सस्कृत प्रायो वाग्व्यापारोनराश्रय.।
भेदैः प्ररोचनायुक्तैः वीथीप्रहसनामुखै.॥

दशरूपक।प्रकाश २,३

अपना स्थान है। अस्तु। नाट्य-रचना के उपरिलिखित तथ्यो के अतिरिक्त कुछ पारिभाषिक और गौण शब्द भी हैं जो रूपक-रचना मे एक प्रकार से आवश्यक हो जाते हैं। प्रस्तावना, नान्दी, नेपथ्य, जनान्तिक, भरतवाक्य आदि का प्रयोग भी प्राय: संस्कृत रूपको मे निश्चित रूपेण किया जाता है।

छत्रपतिसाम्राज्यम्—नाट्यवैशिष्ट्य

हम ऊपर ही रचना-क्रम मे यह निर्देश कर चुके हैं कि यह लेखक की द्वितीय नाट्यकृति है। इसके पूर्व की रचना 'संयोगितास्वयम्वरम्, भारतीय एवं अभारतीय विद्वानो द्वारा प्रशंसित हो चुकी थी, अतः इसके भी वैशिष्ट्य के सम्बन्ध मे दो मत नही हो सकता। तथापि हम नाट्य-रचना-विधान के सिद्धान्त और रचना-शैली आदि की दृष्टि से इसका विवेचन करें, आवश्यक है।

'छत्रपतिसाम्राज्यम्' का कथानक सर्वथा स्तुत्य इतिहास-प्रसिद्ध है। महाराष्ट्र-केशरी छत्रपति शिवराज के शौर्यपूर्ण कार्यों और उनके साम्राज्यस्थापनोद्योग को नाट्यरूप प्रदान करने मे श्री याज्ञिक जी ने पूर्ण प्रयास किया है। इसमे नाट्य-रचना के सभी तथ्य कथा-वस्तु, अवस्था, सन्धि आदि का प्रयोग और निर्वाह सफलता-पूर्वक किया गया है। पूरे नाटक मे १६४६ से १६७४ तक की शिवाजी के जीवन-कार्यों से सम्बन्धित घटनाएँ निबद्ध है। लेखक ने कथा-वस्तु के लिए ग्रैण्टडफ, मर देसाई, मैकमिलन, श्रीपादशास्त्री और मेनर की पुस्तको का सहारा लिया है। शिवाजी का मुख्य उद्देश्य स्वराज्य संस्थापना ही नाटक का प्रमुख प्रयोजन है। इसका संकेत हमे प्रथमाङ्क मे—'इस भूमि को धर्मच्युत, उन्मद शासको के अत्याचार से मुक्त करने के लिए स्वतन्त्र—साम्राज्य-स्थापना के अतिरिक्त अन्य

कोई भी श्रेयस्कर मार्ग नही है।[1] (यही से नाटक की मुखसन्धि, प्रारम्भ नामक अवस्था और 'बीज' अर्थ प्रकृति का आभास मिलता है।) द्वितीयाङ्क मे प्रतिमुख-सन्धि[2] का प्रारम्भ 'सम्प्रति चालीस हजार जन मेरी सेना मे सम्मिलित होना चाहते हैं परन्तु धनाभाव के कारण नियुक्त करने का साहस नही हो रहा है ...।' चतुर्थाङ्क मे तृतीय गर्भ-सन्धि[3] प्रारम्भ होती है– गुप्तचरो को शत्रुओ के विषय मे पूर्णतः परिचय प्राप्त करने दो, पदाति, अश्वारोही, आदि सेना विभागो के अध्यक्ष उन्हे तैयार करें, दुर्गों के अधिकारी उनकी रक्षा के लिए निश्चल सावधान रहे, अब हमे अपना पराक्रम दिखाने का अवसर है और शत्रुओ के विनाश का समय आ गया है। सप्तमाङ्क मे विमर्श सन्धि[4]—'इन्ही श्रेष्ठ दुर्गों से आज तक हमारी स्वतन्त्रता की रक्षा होती रही परन्तु भाग्य के परिवर्तन से हम उन्हे खो देने के लिए प्रस्तुत हो गये हैं। फिर भी भाग्य अनुकूल होने पर पुन ये हमारे

---

१ उद्धर्तु मेना परिपीडिता भुव,
धर्मंच्युतेरम्मदराज सर्व ।
साम्राज्य संस्थापनमन्तरेण,
न वर्ततेऽन्यार्थकरी प्रतिक्रिया ।८

२ किंत्वल्पधनो नोत्सहे तान्विनियोक्तुम् । अपि च द्वीपान्तरा-द्विषयार्थं सम्प्राप्त महान्तं दास्यास्त्रायुधसचय सार्थलक्षेणापि क्रेतु प्रार्थयते मा फिरङ्गी वणिक्पति ।

३ प्रच्छन्न परिपन्थिना परिचय कुर्वन्त्वनल्प स्पशा,
अध्यक्षा. स्वपदाति सादिनिवहान्सनाह्यन्तूद्यता ।
दुर्गाणामवने भवन्त्ववहिता दुर्गाधिपा निश्चला',
सद्यो रोपयितु प्रतापमुदितः कालो द्विषामन्तकः ॥१०

४. परन्तु कालमहिम्ना सम्प्रति तानेवाहूतीकर्तु वय प्रवृत्ता ।
तथाप्यनुकूले दैवे पुनस्त एव भविष्यन्त्यस्मत्स्वातन्त्र्यसहाया. ।

स्वातन्त्र्य प्राप्ति के सहायक होंगे।' अन्त में नवमाङ्क में नाटककार ने पञ्चम सन्धि निर्वहण का निर्वाह बड़ी ही कुशलता-पूर्वक किया है—' अब आपके आदेशानुसार मैंने छह में से पाँच सह्यदुर्गों को अधिकार में कर लिया है।'[1] इतना ही नहीं साहित्यदर्पणकार के मतानुसार 'कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम्'—लेखक ने अद्भुतरस की भी सफल अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है—'अहो इस साधु की मुखाकृति मेरे पुत्र की मुखाकृति से कुछ अंशों में समानता रखती है।'[2] इस प्रकार दसवें अंक में शिवराज का राज्याभिषेक रूप साम्राज्य-संस्थापन उद्देश्य सफल हुआ है।

पूरे नाटक में नाट्य रचना के अन्य नियमों का पालन—विष्कम्भक, प्रवेशक, पताका, प्रकरी, आदि का भी सफल प्रयोग हुआ है। अंकास्य और अंकावतार का भी प्रयोग है। अंकावतार—(एक अंक की कथा का वह अंश जो अग्रिमांक में चले, की सूचना[3]) का प्रयोग—'राजगडदुर्गमापादयास्व राजधानी योज्यताम्। यावत्सम्प्रस्थिता वयं राजकार्याणि पश्याम' (द्वितीयांक) सूचना के अनुसार तृतीयांक का प्रारम्भ—(ततः प्रविशति राजगडदुर्गप्रासादावस्थितो मन्त्रि द्वितीय शिवराज। शिवराज—मन्त्रिन्, सुव्यवस्थितेऽपि राज्यतन्त्रे कथमद्यापि निर्वृतिं न व्रजति मे अन्तरात्मा।' से होता है। इसी प्रकार 'विष्कम्भक' का प्रयोग पूरे नाटक में पाँच स्थानों पर किया गया है। द्वितीयांक के 'विष्कम्भक' में सैनिकों का वार्तालाप जिसमें गत घटनाओं का विवरण, चतुर्थांक में होने वाले भवानी प्रतिष्ठा महोत्सव की

---

१ त्वदादेशानुरोधेन ममात्मसात्कृता पञ्चापि सह्य दुर्गाः।

२. राजमाता—(सविस्मयम् स्वगतम्) अहो वैनायिकस्यास्य मुखच्छविर्मम वत्सस्य मुखच्छविना।

३ अङ्कान्ते सूचित पात्रैस्तदङ्कस्याविभागतः।
यत्राङ्कोऽवतरत्येषोऽङ्कावतार इति स्मृतः॥ —साहित्यदर्पण

सूचना, पञ्चमाक मे दो गुप्तचरो की बातचीत के माध्यम से विगत घटनाओ की सूचना, इसी प्रकार सप्तमाक के विष्कम्भक मे पूर्ववृत्त बताया गया है। पञ्चमांक के विष्कम्भक मे शिवराज द्वारा बघनख के सहारे अफजलवध की घटना गुप्तचर द्वारा बतायी गयी है। नाटक मे 'दूर का मार्ग, वध, युद्ध, राज्य और देश इत्यादि विप्लव—घेरा डालना, भोजन, स्नान, सुरत, अनुलेपन, वस्त्र का पकड़ना आदि बातो को प्रत्यक्ष नहीं दिखलाना चाहिए'[1]। नियम का पालन पूर्णतया यहाँ किया गया है।

'आशीर्नमस्क्रियारूप : श्लोक : काव्यार्थ सूचक । नान्दीति कथ्यते' के अनुसार शिव स्तुतिपरक ललित और भावप्रवण श्लोक से नाटक का प्रारम्भ तथा भरतवाक्य से उसकी समाप्ति हमे कालिदास, भास, भवभूति आदि के नाटको की रीति-नीति का स्मरण करा देते हैं। 'भारती' वृत्ति के रीत्यानुसार नटी द्वारा वर्षाऋतु का मनोहर वर्णन प्रस्तुत कराया गया है।[2] जैसे 'अभिज्ञानशाकुन्तल' म ग्रीष्म का

---

१ दूराध्वान वध युद्ध राज्य देशादि विप्लवम्।
सरोध भोजन स्नान सुरत चानुलेपनम्।
अम्बर ग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत्॥

—दशरूपक । ३

२. रमयति रसयति रसा विशाला।
विचलति चपलपयोधरमाला॥
भवति सपदि जनतापविलयनम्।
मृग्यति मृगपतिरुपरि निलयनम्॥
नमयति तरुगणमलमासार.।
क्षुभ्यति गर्जति पारावार॥
नन्दति मुदितो जनपदलोकः।
जलदविलोकनविगलितशोक॥ —प्रथमाङ्क

वर्णन प्रस्तुत किया गया है। रचनाकार ने शिवराज के जीवन की अठाईस वर्षों की घटनाओं का आकलन और संयोजन नाटक के दस अंकों में किया है। दस अंकों वाले इस नाटक को हम सामान्य लक्षणा-नुसार 'महानाटक' की संज्ञा दे सकते हैं—'पांच अंक वाला नाटक छोटा और दस अंकों वाला नाटक बड़ा कहा जाता है[1]। अस्तु इस संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' नाट्य-रचना विधान की कसौटी पर सर्वथा सफल एक उच्चकोटि की नाट्यकृति है। नाटक में प्रधानतः वीररस की सफल अभिव्यक्ति हुई है—प्रथमाङ्क में ही (उत्तुङ्ग......पिनाकपाणिरवताल्लीलाकिरातः शिवः) वीररस के अङ्गीरस होने और वीर शिवराज के नायक होने का संकेत रचनाकार ने स्वयं दे दिया है। नाटक का संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—

पहला अंक—इस अंक में साम्राज्य-स्थापित करने के लिए साधन और साधक पर शिवराज तथा उनके वयस्क मित्रों द्वारा विचार किया गया है। अंक का नाम 'साम्राज्योपक्रम' है। प्रस्तावना के पश्चात् शिवराज अपने मित्रों—एसाजी, बाजी और तानाजी के साथ मंच पर आते हैं। प्रारम्भ में एसाजी बाजी और तानाजी आपस में यवन शासकों की अत्याचारी नीति तथा उनकी कृपा पर जीवित रहने वाले क्षत्रिय राजाओं के व्यवहार के सम्बन्ध में बातचीत करते हैं—'सभी क्षत्रिय नरेश अपने स्वार्थ के वशीभूत परस्पर कलह करके यवन सम्राट् की शरण में ससुख जीवन व्यतीत कर रहे हैं, यही कारण है कि आज हम भारतीय तेज से हीन हो रहे हैं।' बीच में ही शिवराज ने उनके आपसी विवाद को समाप्त करने की दृष्टि से कहा—हमारी इस दशा का कारण यही है कि क्षत्रिय नरेश भी यवनों का सा आच-रण करने लगे हैं अतः मित्रों इस धरती को इन अधर्मी, अन्यायी

१. पञ्चभाकमेतदवरं दशाङ्गं नाटकं परम्।

—दशरूपक। तृतीय प्रकाश।

शासको से मुक्त करने के लिए हमें प्रयास करके स्वतन्त्र साम्राज्य की स्थापना करनी चाहिए अन्य कोई मार्ग नहीं है। उनके अन्य मित्र इस कथन से सहसा सहमत नहीं होते। इसी समय सेवक से समाचार मिला कि भगिनी को साथ लेकर गाँव जाते हुए नेताजी को बीजापुर-सैनिको ने मार डाला। इस सूचना से शिवराज का रोष द्विगुणित हो गया और उन्होंने तुरन्त कहा—'क्या क्षत्रिय कुल मे उत्पन्न होकर भी हम लोग इस अपराध को क्षमा कर सकते हैं।' कदापि नहीं। हम लोग अब एकमत होकर धर्मराज्य-स्थापना के लिए कटिबद्ध हो जायँ। अन्ततोगत्वा उनके विचार से सभी सहमत हो गए और सर्वतोभावेन सहायक रहने का वचन दिया। इसी समय यह साम्राज्य स्थापना के प्रयास का समाचार जान तोरणादुर्ग व रक्षक ने उपस्थित होकर दुर्ग शिवराज के अधिकार मे सौंप दिया। दुर्ग प्राप्त हो जाने से सबको बडी प्रसन्नता हुई।

दूसरा अंक—यह निधि-प्राप्ति अक है। इसमे सर्वप्रथम चाकण दुर्ग के अधिकार मे आने की सूचना है। फिर जो प्रथम अक मे नेता जी के मुगल-सैनिको द्वारा मारे जाने की सूचना दी थी, उस सम्बन्ध मे यह समाचार कि नेताजी को सैनिको ने मृत समझ कर छोड दिया था और वह चेतना प्राप्त कर, मायेरान यती के यहाँ उन्होंने शस्त्रास्त्र विद्या मे कुशलता प्राप्त कर ली और रायमाची दुर्ग मे प्रवेश किया। बीजापुर-सैनिको ने उन्हे बन्दी बना लिया। फिर उन्होने यवनवेश धारण कर लोहगडदुर्ग में शिवराज से भेंट की यह विष्कम्भक द्वारा सूचित किया गया। उसके पश्चात् तोरणादुर्ग मे शिवराज भविष्य के कार्यक्रम पर विचार-विमर्श करते हैं, धनाभाव के कारण शस्त्रास्त्रो के सग्रह और सैन्य-सगठन मे कठिनाई का अनुभव हो रहा है। उन्होने नेताजी के सकेतानुसार भवानी-मन्दिर में जाकर उनकी आराधना की। वहाँ उन्हें आकाशवाणी सुनायी पडती है कि 'निराश न हो, सहायकों द्वारा अभीष्ट सिद्ध होगा।' सुनकर उन्हे बडा हर्ष हुआ।

वर्णन प्रस्तुत किया गया है। रचनाकार ने शिवराज के जीवन की अठाईस वर्षों की घटनाओं का आकलन और संयोजन नाटक के दस अंकों में किया है। दस अंकों वाले इस नाटक को हम सामान्य लक्षणानुसार 'महानाटक' की संज्ञा दे सकते हैं—'पांच अंक वाला नाटक छोटा और दस अंकों वाला नाटक बड़ा कहा जाता है'[१]। अस्तु इस संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' नाट्य-रचना विधान की कसौटी पर सर्वथा सफल एक उच्चकोटि की नाट्यकृति है। नाटक में प्रधानतः वीररस की सरल अभिव्यक्ति हुई है—प्रथमाङ्क में ही (उत्तुङ्ग... ..पिनाकपाणिरवतात्सीलाकिरातः शिवः) वीररस के अङ्गीरस होने और वीर शिवराज के नायक होने का संकेत रचनाकार ने स्वयं दे दिया है। नाटक का संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—

पहला अंक—इस अंक में साम्राज्य स्थापित करने के लिए साधन और साधक पर शिवराज तथा उनके वयस्क मित्रों द्वारा विचार किया गया है। अंक का नाम 'साम्राज्योपक्रम' है। प्रस्तावना के पश्चात् शिवराज अपने मित्रों—एसाजी, बाजी और तानाजी के साथ मंच पर आते हैं। प्रारम्भ में एसाजी बाजी और तानाजी आपस में यवन शासकों की अत्याचारी नीति तथा उनकी कृपा पर जीवित रहने वाले क्षत्रिय राजाओं के व्यवहार के सम्बन्ध में बातचीत करते हैं—'सभी क्षत्रिय नरेश अपने स्वार्थ के वशीभूत परस्पर कलह करके यवन सम्राट् की शरण में समुत्र जीवन व्यतीत कर रहे हैं, यही कारण है कि आज हम आत्मीय तेज से हीन हो रहे हैं।' बीच में ही शिवराज ने उनके आपसी विवाद को समाप्त करने की दृष्टि से कहा—हमारी इस दशा का कारण यही है कि क्षत्रिय नरेश भी यवनों का सा आचरण करने लग हैं अतः मित्रों इस धरती को इन अधर्मी, अन्यायी

१. पञ्चभिरवमेनदशके दशाङ्के नाटक परम्।

—दशरूपक। तृतीय प्रकाश।

शासकों से मुक्त करने के लिए हमें प्रयास करके स्वतन्त्र साम्राज्य की स्थापना करनी चाहिए अन्य कोई मार्ग नहीं है। उनके अन्य मित्र इस कथन से सहसा सहमत नहीं होते। इसी समय सेवक से समाचार मिला कि भगिनी को साथ लेकर गाँव जाते हुए नेताजी को बीजापुर-सैनिकों ने मार डाला। इस सूचना से शिवराज का रोष द्विगुणित हो गया और उन्होंने तुरन्त कहा—'क्या क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होकर भी हम लोग इस अपराध को क्षमा कर सकते हैं।' कदापि नहीं। हम लोग अब एकमत होकर धर्मराज्य-स्थापना के लिए कटिबद्ध हो जायें। अन्ततोगत्वा उनके विचार से सभी सहमत हो गए और सर्वलोभावेन सहायक रहने का वचन दिया। इसी समय यह साम्राज्य स्थापना के प्रयास का समाचार जान तोरणादुर्ग के रक्षक ने उपस्थित होकर दुर्ग शिवराज के अधिकार में सौंप दिया। दुर्ग प्राप्त हो जाने से सबको बड़ी प्रसन्नता हुई।

दूसरा अंक—यह निधि-प्राप्ति अंक है। इसमें सर्वप्रथम चाकण दुर्ग के अधिकार में आने की सूचना है। फिर जो प्रथम अंक में नेता जी के मुगल सैनिकों द्वारा मारे जाने की सूचना दी थी उस सम्बन्ध में यह समाचार कि नेताजी को सैनिकों ने मृत समझ कर छोड़ दिया था और यह चेतना प्राप्त कर, मायेरान यती के यहाँ उन्होंने शस्त्रास्त्र विद्या में कुशलता प्राप्त कर ली और राजमाची दुर्ग में प्रवेश किया। बीजापुर-सैनिकों ने उन्हें बन्दी बना लिया। फिर उन्होंने यवनवेश धारण कर लोहगढ़दुर्ग में शिवराज से भेंट की यह विष्कम्भक द्वारा सूचित किया गया। उसके पश्चात् तोरणादुर्ग में शिवराज भविष्य में कार्यक्रम पर विचार विमर्श करते हैं, धनाभाव के कारण शस्त्रास्त्रों के संग्रह और सैन्य-संगठन में कठिनाई का अनुभव हो रहा है। उन्होंने नेताजी के संकेतानुसार भवानी-मन्दिर में आकर उनकी आराधना की। वहाँ उन्हें आकाशवाणी सुनायी पड़ती है कि 'निराश न हो, सहायकों द्वारा अभीष्ट सिद्ध होगा।' सुनकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ।

से पुष्ट करके उनमें राष्ट्रीय-भावना का समावेश कर रहा हूँ जो भविष्य में रण में सहायक बनेंगे। रामदासजी के चले जाने पर वह मन्त्रणागृह में प्रवेश करते हैं। चर ने आकर बताया कि बीजापुरनरेश का सेनापति बन्दी बनाने के लिए प्रस्थान कर चुका है। उसके पश्चात् ही शत्रुपक्षीय दूत कृष्णाजी उपस्थित होते हैं। दूत ने बीजापुरेश की ओर से सन्धि प्रस्ताव रखा। शिवराज ने प्रजा की हित कामना से स्वीकार कर लिया। फिर पन्तोजीगोपीनाथ को शत्रु के मन की बात जानने के लिए भेजा। शत्रु-दूत ने यह बताया कि हमारे सेनापति किसी प्रकार आपको बन्दी बनाने की अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करना चाहते हैं। शिवराज ने दूत को—सेनापति से कहो कि एकाकी शिविर में मिलकर मुझे हस्तगत कर सकते हैं। यह सूचित करो कि सेना से घिर रहने के कारण आपके पास आने में शिवराज भयभीत होता है' समझाया। और दूत की इच्छानुसार अपना दूत भी भेजकर ऐसी सूचना दे दी। फिर समय निश्चित हो जाने पर, ठीक समय पर बघनख आदि से सज्जि। शिवराज अंगरक्षक तानाजी के साथ एकान्त शिविर में मिलने जाने का निर्णय किया। अपने कुछ सैनिकों को पर्वत की उपत्यका में छिपकर रहने और शृंगी ध्वनि के संकेतानुसार आक्रमण करने का आदेश भी कर दिया।

दुर्गों में आश्रय लेलें।' कहकर शिवराज राजकार्यों के निरीक्षणार्थ सभाभवन में चले जाते हैं।

छठवाँ अंक—यह 'छलप्रबन्ध' नामक अंक है। सिंहगडदुर्ग में नेताजी और मंत्री से परस्पर वार्ता और अरक्षित मुगलप्रदेशों के अधिकृत हो जाने की सूचना। फिर शिवराज का प्रवेश और 'मन्त्रिगण युद्ध पुनः निकट है' वाक्य उपस्थित करना। इसी समय दिल्ली नगर से आगत यवन तपस्वी का प्रवेश और दक्षिणापथ का राज्यपाल आपको बन्दी बनाने के लिए, पूना नगर में बैठकर आक्रमण की योजना बना रहा है', यह सूचना देना। शिवराज ने मुगलसेना में स्थित मराठा सेनापति के पास एक बारात निकालने को मुगलसेनापति से आज्ञापत्र प्राप्त करने के लिए सन्देश भेजा और कहा कि उसमें वेष बदलकर हमलोग बाराती रहेंगे। यवन तपस्वी चला जाता है। अपने साथ केवल पचास सैनिक, अमात्य और पदाति सेना के अध्यक्ष को रहने का आदेश (बारात में) कर दिया। मंत्री ने मुगल सैनिकों को धोखा देने के लिए योजना बनायी लौटने के समय हमारे कुछ सैनिक 'कात्रज' के मार्ग में वृक्षाग्र-भागों पर और बैलों की सीगों पर कपड़ों की ज्वालाएँ जलायें। मुगल सैनिक उधर ही दौड़ेंगे।' उसके बाद शिवराज राजमाता के दर्शनार्थ चले गए।

सातवाँ अंक—यह 'मोगलसेना-अनुसन्धान नामक' अंक है। विष्कम्भक में मुगल सेना के दो सेनापतियों की बातचीत होती है। दूसरे सेनापति ने यह बताया कि रात्रि में सम्राट् के मामा के महल में शिवराज घुस गया और उसकी अंगुलियों को काट लिया। सहायतार्थ उपस्थित उसके पुत्र को शिवराज के अंगरक्षक सैनिक ने मार डाला। मुगलसेना ने भागते हुए शिवराज का पीछा किया किन्तु कात्रजमार्ग में प्रकाश देखकर सेना उधर चली गयी और निराश होकर लौट आयी। इससे रुष्ट हो दक्षिण के राज्यपाल ने सिंहगडदुर्ग पर घेरा डाल दिया। परन्तु यह घेरा व्यर्थ गया, शिवराज की सेनाओं ने उसे पराजित कर

दिया। यह सूचना पाकर राज्यपाल ने सभाधिपति के पद पर अपने मामा को तथा सेना का नायक जयसिंह को नियुक्त कर शिवराज को पकड़ने का आदेश दिया है। इसी के साथ शिवराज के दूत रघुनाथपन्त के आगमन की सूचना भी है। उसके पश्चात् सेवकों सहित शिवराज जयसिंह की सेना के शिविर की ओर प्रस्थान करते हैं। जगन्नाथपत और शिवराज की बातचीत भी होती है। निकट पहुँचकर पुरन्दर दुर्ग के मुगलसैनिकों द्वारा घिर जाने की जगन्नाथपन्त शंका व्यक्त करते हैं। उसी समय घोड़े पर सवार उदयसिंह तेजी से आता है और सूचित करता है—'जयसिंह का कहना है कि मेरे आदेश का पालन स्वीकार हो तो मिल सकते हैं अन्यथा वापस जायें।' स्वीकृति देकर शिवराज जयसिंह से उसके सैन्य शिविर में भेंट करते हैं। विचार-विमर्श के बाद सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर देते हैं। जयसिंह युद्ध विराम हेतु उदयसिंह को पदाति सेना नायक को आदेश सुनाने के लिए भेजता है। यवनराज के आदेशानुसार जयसिंह शिवराज को बहुमूल्य वस्त्राभूषण प्रदान करता है।

आठवाँ अंक—इस 'प्रयाणप्रबन्ध' नामक अंक में शिवराज और यवनराज के समागम का जयसिंह द्वारा प्रबन्ध किया गया। जब शिवराज अपने सभी साथियों-सहित वहाँ पहुँचे तो उन्हें वहीं घेर कर बन्दी बना लिया। शिवराज ने मिष्ठान्न ले जानेवाली पचीस टोकरियाँ खरीदवा कर मँगाया और प्रारम्भ में पाँच टोकरियाँ मिठाईयों से भर कर बाहर भेजा, मुगल-रक्षकों ने भलीभाँति निरीक्षण किया और विश्वस्त हो गये कि कोई छल नहीं है। फिर एक टोकरी में शिवराज अपने पुत्र-सहित बैठकर निकल गये। उनके स्थान पर हीरोजी रोगाक्रान्त होने का बहाना कर मुगलों को भ्रम में डाले रहा। अन्त में वह भी सबके साथ वेश बदलकर निकल गया और प्रयाग के मार्ग में शिवराज से मिला। इस प्रकार सभी स्वप्रदेश पहुँच गये। प्रातः

मुगल-रक्षक ने शिवराज को शयन स्थान पर न पाकर यह सूचना यवनराज को दी।

नवाँ अंक—यह 'दुर्गविजय' नामक अंक है। प्रधानमन्त्री ने राजमाता को सूचना दी कि छह मे से पाँच दुर्गों को अधिकार मे कर लिया है। उसके बाद कुछ साधु आते हैं। राजमाता साधुओ से पुत्र शिवराज के समाचार जानना चाहती हैं। प्रधान साधु राजमाता को गंगाजल से पूर्ण कलश देकर कहता है कि अभिषेक के लिए तीर्थों से मैं ले आया हूँ। उस साधु की मुखाकृति को देखकर राजमाता के हृदय मे शिवराज का सन्देह होता है। अन्त मे शिवराज प्रकट हो जाते हैं। माता को अपार हर्ष होता है। प्रधानमन्त्री चाकण आदि दुर्गों को जीत लेने की सूचना शिवराज को देता है, कल्याण प्रान्त के विजयार्थ सैन्य समूह के प्रस्थान करने का समाचार और सिंहगढ के विजय की कठिन समस्या बताता है। शिवराज ने सिंहगढ के जयार्थ तानाजी के सेनापतित्व मे सेना को प्रस्थान करने का आदेश दिया। दक्षिण के राज्यपाल का दूत उपस्थित होकर सार्वभौम सम्राट् का पत्र देता है। मन्त्री पढ़कर सुनाता है—'शिवराज को राजपद पर प्रतिष्ठित कर पड़ोस के दो राज्यो के चतुर्थांश ग्रहण करने का अधिकार प्रदान करते हैं। शिवराज ने मन्त्री को आदेश दिया—' सशक्त सेना द्वारा चतुर्थांश ग्रहण करने के बहाने महाराष्ट्र प्रदेश को अपने अधिकार मे कर लेना चाहिए। इस समय मुगल-सम्राट् गान्धार-विजय मे व्यस्त है। मैं कर का संग्रह करने के लिए गुर्जर-प्रदेश जा रहा हूँ। वापस आने पर साम्राज्याभिषेक-महोत्सव सम्पन्न होगा।' सभी मन से चले जाते हैं।

दसवाँ अंक—प्रारम्भ मे विष्कम्भक द्वारा सिंहगढदुर्ग के विजय की सूचना, साथ ही उदयभानु और तानाजी वीरो के वीरगति प्राप्त करने का समाचार प्राप्त होता है। सारा वार्तालाप दो राजपुरुषों मे होता है। दूसरे राजपुरुष ने बताया कि सर्वत्र शिवराज का विजयध्वज

फहर उठा। कल्याणप्रदेश को आबाजी ने, प्रधानमंत्री ने माहुलीदुर्ग को और प्रतापराव ने साल्हेर दुर्ग को अधिकार में कर लिया है, समाचार बताता है। वार्तालाप करते हुए दोनों साम्राज्याभिषेक-मण्डप के निकट पहुँचते हैं। अभिषेक-महोत्सव सानन्द सम्पन्न होता है। विष्कम्भक के पश्चात् साम्राज्याभिषिक्त शिवराज छत्र-चामरधारी सेवकों से सेवित राज्ञी-सहित रत्नसिंहासन पर आसीन मंच पर उपस्थित होते हैं। उन्होंने सामन्तों के प्रतिनिधियों को बहुमूल्य वस्त्राभूषण देने, सभी ब्राह्मणों को लक्ष, चौबीस हजार और पाँच हजार मुद्राओं सहित (क्रमश) वस्त्राभूषणों से सम्मानित करने का आदेश कर समस्त अन्य ब्राह्मण-स्नातकों को वार्षिक-वृत्ति की व्यवस्था की अनुमति दिया। आठ प्रधानमन्त्रियों को बहुमूल्य रत्न और वस्त्राभूषणों से विभूषित किया गया। युद्धभूमि में आत्मोत्सर्ग करनेवाले वीरों के कुल वालों को राजकुल-वैभव से सम्मानित करने का आदेश शिवराज ने प्रधानमंत्री को दिया। अन्त में गुरुचरण श्री रामदास ने उपस्थित होकर राष्ट्र-समृद्धि का अमोघ आशीष नाटक के 'भरतवाक्य' कथन द्वारा प्रदान किया। मंच से सभी जन चले जाते हैं।

साहित्यिक-सौष्ठव एवं मूल्यांकन

'छत्रपतिसाम्राज्यम्' के नाट्य-वैशिष्ट्य तथा रचना-विधान आदि पर हम पहले ही विचार कर चुके। और अब साहित्यिक-सौष्ठव का दिग्दर्शन करा देना भी उचित समझते हैं। वैदर्भीरीति एवं भारती वृत्ति में लिखित इस नाटक की प्राञ्जल-परिष्कृत भाषा, इसके भाव-प्रवण चित्रण हमें अनायास ही एक सफल काव्य-प्रणेता का स्मरण करा देते हैं। रसाभिव्यक्ति और अलंकारों का प्रयोग सहजत हुआ है। अर्थान्तरन्यास, रूपक, दृष्टान्त, अपह्नुति, निदर्शना, उपमा, अनुप्रास, और विषम आदि अलंकारों का प्रयोग विशेषत. देखने को मिलता है। साहित्यिक-सौष्ठव की दृष्टि से नाटक के प्रत्येक अंक में

आये गीत, प्रकृति चित्रण-सम्बन्धी स्थल, वीररसाभिव्यक्तिपूर्ण छन्दों का बाध्यत्व उल्लेखनीय है। प्रस्तावना के पश्चात् नाटक का प्रारम्भ वीर-भाव पूर्ण कथनों से होता है। प्रस्तावना का गीत जिसमे वर्षा ऋतु का वर्णन—'विशाल धरती जल का पूर्णरूप से आस्वादन करने लगी, चचल मेघों का दल इधर-उधर घूम रहा है। लोक का ताप नष्ट हो रहा है, सिंह पर्वत के उच्चभाग मे धारण ढूढने लगा। जलबूदो के भार से वृक्ष-समूह झुक रहा है, विशाल सागर उफनाने लगा है। बादलों का समूह देखकर, मनुष्य शोक-रहित अब आनन्दित हो रहे हैं।' कितना स्वाभाविक और हृदयहारी है।

प्रकृति-चित्रण विषयक वर्णनो को पढ़ते समय हमारा हृदय बलात् उसके भावों मे रमकर उपस्थित उपादानो के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए उत्कण्ठित हो उठता है और हमे वे प्राकृतिक उपादान निर्जीव निसर्ग वस्तु नही अपितु जीवन्त-प्रेरणा-स्रोत से प्रतीत होते हैं—'पर्वत के ऊँचे-नीचे दुर्गम मार्ग जो वृक्षो, लताओ, कुञ्जो और घासो से ढँके रहते हैं प्रयत्न करने पर साध्य हो जाते हैं, इससे सीधे हमे यह शिक्षा प्राप्त होती है कि उपाय द्वारा दुर्गम रास्तो को लाँघा तथा कुटिल शत्रुओ पर विजय प्राप्त की जा सकती है।'—(अक ७।१)। उदय होते सूर्य की रक्तवर्ण प्रकाश बिखेरनेवाली किरणों का प्रसार हो रहा है, देखिए—

> अपास्य दूरं मलिना तमस्विनी,
> क्षणेन तिर्यक् प्रसृतैर्नवांशुभिः।
> लता प्रतानाम्रनिकुञ्जमण्डिता,
> दिवाकरेणाद्य कृता वनस्थली॥ अक २।२

सूर्य ने अपना नव किरणो के प्रसार से क्षणमात्र मे ही रात्रि के मलिन अन्धकार को दूर करके, लता आम्रमजरी और निकुञ्ज से विभूषित वनस्थलो को रजित कर दिया। तेजस्वी विशाल हृदय पुरुषो की महनीयता और लोकमगल-भावना के प्रसार का उदाहरण दोपहर के पूर्णउदित सूर्य से उपस्थित किया गया है—

उद्भाम्य शैलशिखरोच्छ्रित पादपाग्र,
तेजोनिधिः किमुदितो विरमेद्विवस्वान् ।
अभ्युद्गतो गगनमध्यपद क्रमेण,
धाम्ना निजेन निखिल भुवन चकास्ति ॥

—अंक ३।२

क्या सूर्य उदय होकर पर्वत की चोटियो पर उगे हुए वृक्षों के ऊपरी भाग को प्रकाशित करके ही विश्राम ले लेता है, नही ; वह धीरे-धीरे गगन के मध्य तक पहुँच कर अपनी किरणो के प्रकाश से समस्त जगत को ही प्रकाशित कर देता है।' पर्वत की चोटियाँ, सघन हरित-वृक्षावली, हवा के चलने से वृक्ष-समूह के पत्ते अपनी शाखाओ के साथ आन्दोलित हो रहे हैं, सारा वन जैसे गम्भीर सिन्धु हो, हिलोरें ले रहा हो—'पर्वत के पार्श्व मे वृक्ष, गुल्म और लता-वितान के कारण गहन वन जिसमे सर्वत्र प्राणियो का निवास है, वायु चलने के कारण समस्त वन समुद्र की समता को प्रकट कर रहा है।'—(अक ४।२०)। विशालगड दुर्ग अपनी उच्चता और दुर्जेयता के कारण कवि के लिए ऐरावत गज के समान प्रतीत होता है—'यह विशालगडदुर्ग, अपनी विशालता, ऊँचे-ऊँचे गुम्बदो के कारण, उन्नत गण्डस्थल के सदृश, सूड़ की भाँति अग्रभागवाला, दुराक्रमणीय, विस्तृत पार्श्वभाग से शोभित इन्द्र के गज ऐरावत की शोभा धारण कर रहा है।—(अक ५।१)। गाँव, नगर की निर्ममता और रमणीयता का दिग्दर्शन देखिए किस अनासक्त भावना से कराया गया है—

लुलितपथिकनेत्रैं पूरयित्वा रजोभि—
र्वसनमपहरन्तो लुण्ठकारश्चवाताः।
जनपदपुरमार्गे संभ्रमन्तो यथेच्छं,
वियदभिघनमीता उत्प्लवन्ते समन्तात् ॥

—अक ५।११

वर्षा का समय है। हवा चल रही है। कवि का कथन--ग्राम और नगरों के मार्ग में ववण्डर (तेजवायु) स्वेच्छापूर्वक विचरण करता, बादलों से भयभीत-सा चारों ओर से उठकर आकाश की ओर प्रस्थान कर रहा है, और इस प्रकार यह ववण्डर एक लुण्ठक (लुटेरा) के समान श्रान्त पथिक की आँखों में धूल झोंककर उसके वस्त्रों का अपहरण कर रहा है। इतना ही नहीं एक स्थान पर पर्वत की उच्च चोटियाँ, सघन वृक्षावली और निर्झर आदि, कवि की दृष्टि में शिवराज के लिए प्रबल दुर्ग सदृश प्रतीत होते हैं--'पर्वत की ऊँची-नीची धरती, उसकी गुफाएँ, नाना प्रकार की लताओं और वृक्षों से सुशोभित वन, पर्वत के उच्च शिखर से प्रवाहित होनेवाले निर्झर, ये सभी आपके लिए सुदृढ़ दुर्ग के रूप में और शत्रु के लिए बाधा-स्वरूप स्थित हैं।--(अंक ७१२)। ऐसे और भी अनेक स्थल नाटक में हैं जहाँ नाट्यकार पूर्णरूपेण कवि के रूप में कल्पना और भाव से उद्वेलित हो उठा है। प्रकृति-सौन्दर्य चित्रण के अतिरिक्त नाटककार शौर्य चित्रण में सर्वथा सक्षम है। प्रकृति-चित्रण और शौर्य दोनों से पूर्ण यह छन्द देखिए--

आच्छाद्यार्धमोऽग्णरश्मि त्रियवननिभिव्याग्नमापादयद्भि--
हुँम्मर्मोद्भेदिनादैः स्तनितपटहबैर्गंबमाघोपयद्भिः।
धारासंपातमग्न प्रतिभटविटपि व्याकुलोपरप्रान्त,
मात्मान्मो म्लेच्छसैन्यैर्जलधर निवहैर्दुर्गराजः समन्तात् ॥

—अंक ७१४

दुर्ग चारों ओर से म्लेच्छ-सेना द्वारा घिर गया है। वृक्ष रूपी हमारे सैनिक प्रतिपक्षियों की तलवार से काट डाले गए हैं। जैसे बादल अपनी घनी पंक्तियों से सूर्य को ढँक लेते हैं, उसी प्रकार मुगलों की सेना से हमारा सेनापति घिरा हुआ है, बादलों की भीषण गरजना के समान उनके नगाड़ों से निकलती मर्मपूर्ण ध्वनि हृदय को मर्माहत कर रही है। हमारे सैनिक उसी प्रकार व्याकुल हैं जैसे बादलों से गिरती जलधारा से वृक्षों के समूह हो जाते हैं।

नाटक के प्रथम श्लोक से ही स्पष्ट है कि इसमे वीररस अंगीभूत होकर अभिव्यक्त हुआ है अत सर्वत्र शौर्य आदि भावो की अभिव्यक्ति स्वाभाविक है। यही कारण है कि पर्वत के पार्श्व मे स्थित सघनवन निर्झर, सरिताएँ दुर्ग और विशाल वृक्षो को एक वीर सैनिक के रूप मे स्थान-स्थान पर वर्णित किया गया है। वर्णन पढते समय वीर का शौर्य युक्त शरीर प्रत्यक्ष दृष्टिगत होने लगता है और हृदय उसके तेज से प्रकाशित होकर निर्भय हो जाता है। शिवराज के शस्त्र सज्जित रूप का वर्णन पढकर ही हम उनके स्वरूप का दर्शन करने लगते हैं—

प्रजवतुरग कल्पितासनोऽयं,
कवचधरः करवालकुन्तनद्धः।
अरुणित नयनो रुषा महोग्र,
सरभसमेत्यभितो द्विषा कृतान्त' ॥

—अंक ४।१६

शीघ्रगामी घोडे पर सवार, कवच धारण किये हुए, तलवार, भाला लिए, लाल-लाल, आँखो और महत्तेज के कारण भयानक, शत्रुओ के लिए यमराज चले आ रहे हैं। शिवराज की सेना विजय के लिए प्रस्थान कर रही है, उसका रूप देखिए—

सुतीक्ष्ण भल्लासिधनु समूर्जिता,
विशालतूणी परिणद्धपार्श्वा।
स्वातन्त्र्यसम्भावनया समेधिता
प्रयान्तु मे वन्यपदातिसेना ॥

—अंक २।११

तीक्ष्ण भालों, कृपाण, धनुषों से प्रबल, कटि प्रदेश में तूणीर धरे हुए, स्वातन्त्र्यभावना से भलीभाँति प्रोत्साहित वनवासियों की हमारी पैदल सेना प्रस्थान करे।

ऊपर हम लिख चुके हैं कि दृष्टान्त उपमा, अर्थान्तरन्यास, निदर्शना,

अनुप्रास आदि अलंकारों का समावेश सहज ही हुआ है। यहाँ एक-दो उदाहरण प्रस्तुत करना अनुचित न होगा—

> स्वल्पोऽप्यग्निर्ज्वलयति न किं कानन शैलसस्थं
> मत्तेभेन्द्रान्विदलति न किं लीलया सिंहशावः।
> बालोऽप्यर्को विकिरति न किं ध्वान्तभारात् क्षणेन
> सर्वत्रैवाप्रतिहतरयस्तेजसा हि प्रभावः॥
>
> —अंक १।१२

अर्थान्तरन्यास का समावेश इसमें कितनी सहजता से हो गया है। दृष्टान्त का उदाहरण—'साहाय्यमासाद्य मरुद्धनौरसा'''कृता कवन्धता' (अंक १।१४) और अन्त्यानुप्रास का उदाहरण'—कुमारकुमार ''रसय रसेश मां रसिकेश' (गीत अंक ७) रूपक का उदाहरण-'वियोगरोगव्याधि' केसरिण किशोर' (अंक १।४) अपह्नुति—'अवेहि नेम'''वपुरेव मूर्तिमत्'—(अंक २।६) और निदर्शना—लोकप्रकाशन'''गुणपरसुषमां दधाति' (अंक ३।१५), आदि।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' ये कथा-वस्तु तथा संघटना-विन्यास में नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों एवं सीमाओं का सर्वथा ध्यान रखा गया है। साथ ही साहित्यिक-सौष्ठव की दृष्टि से प्रकृति चित्रण, रसादि की पूर्ण अभिव्यक्ति, अलंकारों का समावेश उचित रीति-नीति से हुआ है। 'भारती' वृत्ति, वैदर्भीरीति, वीररस की प्रधानता, स्वराज्यसंस्थापना, मंगल प्रयोजन, पराक्रमशाली प्रतापी नायक शिवराज, इतिहासप्रसिद्ध कथावस्तु ये सभी इस कृति को एक श्रेष्ठ नाट्य की संज्ञा दिलाने में सर्वथा समर्थ हैं। इस प्रकार का यह महानाटक है। श्री याज्ञिक जी नाट्यरचना में पूर्णतया सफल हैं। किन्तु उनकी नाट्यकला का सम्यक् विवेचन 'संयोगितास्वयम्वरम्' तथा 'प्रतापविजयम्' के अध्ययनोपरान्त ही उचित होगा।

इस नाटक के प्रथम प्रकाशन के पश्चात् यह प्रथम बार हिन्दी-अनुवाद-सहित, द्वितीय प्रकाशन कर 'देवभाषा प्रकाशन' के व्यवस्थापक ने प्रशंसार्ह कार्य किया है। आधुनिक संस्कृत नाट्य कृतियों का प्रकाशन साहसिक कार्य है।

शङ्कर-जयन्ती,

संवत् २०२६ विक्रम —शिवशङ्कर त्रिपाठी

दारागंज, प्रयाग—६

पात्र–परिचयः



प्रमुखपात्राणि—

शिवराज	(महाराष्ट्राधिप, नाटकस्य नायक)
एसाजी तानाजी बाजी दादाजी	शिवराजवयस्या सैनिका
माबाजी	(कल्याणप्रान्ताधिप)
श्रीरामदास	(शिवराजस्य गुरुचरणा)
कृष्णाजी	(यवनराजस्य सन्देशहर)
जगन्नाथपन्त रघुनाथपन्त	(शिवराजस्य सन्देशहरा)
जयसिंह	(यवनराज्य सेनानायक)
उदयसिंह	(यवनसेनाया सैनिका)
जसवन्तसिंह	(मुगल सेनापति)
रामसिंह	(जयसिंह पुत्र)
हीरोजी	(शिवराजवयस्य)
प्रतापराव	(शिवराज कुमार)
गागाभट	(काशीनिवासिन पण्डितवर)
राजमाता	(शिवराजस्य जननी)
राज्ञी	(शिवराजस्य राज्ञी)

अन्यपात्राणि—

प्रतीहार, कञ्चुकी, गूढचर, द्वारपाल, दुर्गपालाश्च

धर्मध्वंसधृतव्रतान् परधने लुब्धान् मृदौ निर्दयान्,
मन्दान् विक्रमशालिनि प्रतिभटे कूटप्रयोगोत्कटान्।
विश्वस्तेऽपि च हिंसकान् कुलवधूसंधर्षणे सोत्सवान्,
गोविप्रेष्वपचारिणः कथमिमान् देवद्विष सश्रये॥ २४

दादाजी—वत्स, शिवराज, सम्यगवधारितयवनेशस्वभावमद्य त्वामवरोद्धुं नोत्सहे। तच्छृणु मे परम मधवचन यदाश्रयणेन निष्प्रत्यूहा भविष्यन्ति तवाभिलार्षसिद्धय। त्वं तावत्

अन्योऽन्येर्ष्याकलुषितधियः सम्प्रयुञ्जन्नृपालान्,
प्रीत्युद्रेकाद्वनचरपतीन् प्रीणयन् सिद्धलक्ष्यान्।
दानैर्मानैर्मधुरवचनै रञ्जयन् लोकवीरान्,
लीलापूर्वं जय यवनराट् दुर्जयोद्‌दामदुर्गान्॥ २५

अन्योऽन्येति—अन्योऽन्येर्ष्यया कलुषिता धी येषां तान् नरेन्द्रान् सम्प्रयुञ्जन् सङ्गमयन्, प्रीतेः उद्रेकः उत्कर्षः तस्मात् हेतो सिद्धं लक्ष्यं येषां तान् वनचरपतीन् प्रीणयन, दानैः मानैः मधुरवचनैः लोकाः

ये धर्म विनाश का व्रत धारण किये हुए, परधन के लोभी, निर्बलों के लिए क्रूर, विक्रमशाली के सामने नम्र, किन्तु प्रतिपक्षी सैनिकों के साथ छल करनेवाले, विश्वासी लोगों के साथ भी हिंसा-वृत्ति रखने, कुलवधुओं का अपहरण और गो ब्राह्मणों पर अत्याचार करनेवाले, देवताओं के विद्वेषी हैं। २४

दादाजी—वत्स शिवराज यवनेश के स्वभाव को भली भांति जान लेने के पश्चात् अब तुम्हें रोकने का साहस मुझमें नहीं है। अब सुनो मैं जो नीतियुक्त बात कहता हूं उसके सहारे चलना से अभीष्ट सिद्ध होगा। तुम—

पारस्परिक द्वेष से कलुषित हृदय राजाओं को एकता के सूत्र में बाँधो, अपने स्नेहप्रदर्शन से वनचरपतियों को (जो लक्ष्य साधन में सिद्ध हैं) प्रसन्न कर अपने साथ लो, प्रजाजन, वीरों को मान, सम्मान, दान

कुमार, सर्वत्र मंत्रगुप्त्यधीन एव विजयः। तन्मन्त्रसंवरणे सर्वदा त्वया सावधानेन भवितव्यम्। यतः

मन्त्रो विहङ्गैः पशुभिश्च गृह्यते, तत्संश्च कुड्यैः पटलैर्निशाम्यते।
समीरणेनाऽपि सुदूरमुह्यते; कदाचिद्विश्वस्तजनैस्तु भिद्यते ॥२६

एवं च सुगुप्तमन्त्रस्त्वं

साम्ना क्षत्रपुलिन्दवृन्दनृपतीनापादय स्वानुगान्,
निःशङ्कं नयसंश्रितो बलवतो दृप्तानरीन्पर्यव।

प्रजाजना वीरा विक्रमशालिनश्च तान् रञ्जयन् लीलया युद्धानि लीलायुद्धानि तैः जनपदान् देशान् दुर्जयान् च महीदुर्गान् जय।

साम्नेति—क्षत्रा क्षत्रियाः पुलिन्दा वनेचराः तेषां वृन्दानि समूहान् नृपतीन् च स्वानुगान् स्वानुकूलान् आपादय कुरु। ततश्च नयसंश्रितो बलवतः दृप्तान् गर्वितान् रिपून् निःशङ्कं पर्यव आक्रमस्व। पूर्णांश्च ते शरणम्, बलवद्भ्यः तं विकल्पिते प्रतिविधाने मा स्म प्रमत्तो भव प्रमादं मा कुरु इत्यर्थः। स्वात्मानं समुपास्व सर्वात्मना अवलम्बस्व इत्यर्थः। तत्र मन्त्रिभिः सममन्य निर्णीतः अर्थः स एव परमः प्रधानः यस्य तादृशः सन् साम्राज्यमास्थापय।

और मधुरवाणी द्वारा सन्तुष्ट करके, कौतूहल की भाँति युद्ध द्वारा जनपदों और दुर्जेय दुर्गों पर विजय प्राप्त करो। २५

कुमार! विजय नीति की गोपनीयता पर निर्भर करती है अतः तुम मंत्र की गोपनीयता की ओर अवश्य सावधान रहना। क्योंकि—मंत्र, पशु-पक्षियों द्वारा ग्रहण किया जा सकता है, पर्दा, दीवार और छत इसे सुन सकते हैं, इसे वायु दूर तक ले जा सकता है एवं कभी-कभी अपने ही विश्वस्त जन द्वारा इसका भेद खुल सकता है। २६

इस प्रकार तुम गुप्त मंत्रणा द्वारा—क्षत्रियों तथा भीलों के गिरोहों को अपने पक्ष में करके, नीति के सहारे निःशंक होकर बल से उन्मत्त शत्रु पर आक्रमण करो। पूर्ण शत्रु के साथ प्रतिविधान करने में

धूर्तारातिविकल्पिते प्रतिविधौ मा स्म प्रमत्तो भव,
स्वातन्त्र्यं समुपास्स्व मन्त्रिपरमं साम्राज्यमास्थापय ॥ २७

शिवराज — भगवन्नैष उपदेशः किन्तु साक्षाद्वर एव। अतो भगवदनुग्रहेणाचिरेण समासादयिष्ये साम्राज्यसिद्धिम्।

दादाजी — वत्स, सफला सन्तु ते नयोपक्रमाः। (इति निष्क्रान्तः)

शिवराज — दिष्ट्या गुरुचरणा अप्यत्रानुकूलाः संवृत्ताः।

तानाजी — (दूरं विलोक्य) कुमार समुपागतोऽयं जराजर्जरिताङ्गस्तोरणदुर्गपालः

तोरणदुर्गपाल — (प्रविश्य) (शिवराजमुपसृत्य) कुमार, धर्मराज्यसंस्थापनोद्यतं त्वां निशम्य तीर्थयात्राप्रवणेन मया त्वदायत्तं क्रियते मम तोरणदुर्गं। त्वं तावत्तत्र स्थित्वा प्रवर्तय तव शासनम्।

शिवराज — यदत्र भवते रोचते। श्व एवाहं तत्र प्रस्थास्ये।

भी प्रमाद मत करो, एवं अपने मन्त्रियों द्वारा निश्चित नीति के मार्ग पर चल कर स्वतन्त्रता की उपासना और साम्राज्य की स्थापना करो। २७

शिवराज—भगवन्, यह उपदेश नहीं साक्षात् वरदान है। अतः आपके अनुग्रह से मैं शीघ्र साम्राज्य-स्थापना की सिद्धि प्राप्त कर लूँगा।

दादाजी—वत्स, तुम्हारी नीति सफलीभूत हो। (चले जाते हैं)

शिवराज—भाग्य से गुरुश्रेष्ठ भी अनुकूल हो गये।

तानाजी—(दूर देखकर) कुमार, वृद्धावस्था के कारण जर्जर शरीर यह तोरणदुर्ग का पालक आ रहा है।

तोरणदुर्गपाल—(प्रवेश कर और शिवराज के पास पहुँचकर) कुमार, यह सुनकर कि आप धर्मराज्य स्थापना हेतु तैयार हैं, मैं तोरणा दुर्ग आप के अधिकार में सौंप रहा हूँ क्योंकि मैं तीर्थ-यात्रा के लिए प्रस्तुत हूँ। आप तब तक वहाँ रहकर अपना शासन प्रारम्भ करें।

शिवराज—जैसी आपकी इच्छा। कल ही मैं वहाँ के लिए प्रस्थान करूँगा।

तोरणदुर्गपाल —वत्स चिरंजीव । पूरयतु तव मनोरथं भगवती वरदेवता । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराज —दिष्ट्या हस्तगतोऽस्माकं तोरणदुर्गः । एवं

अनायासेन कार्यस्य यस्य सिद्ध्यत्युपक्रमः ।
आसमाप्तेर्ध्रुवं तस्य व्याघातो नैव कुत्रचित् ॥ २८

तानाजी —भवान्यनुग्रहशालिनस्ते किमप्यसाध्यं नाम ।

एसाजी —तोरणाद्व्यना तु साम्राज्यश्रीमन्दिरस्य तोरणमेव त्वया समासादितम् । अतः परं ते भद्रमेव पश्यामि ।

शिवराज —वयस्याः, भवतां साहाय्येन सन्निहितैव मम साम्राज्यसिद्धिः । तद्युष्माभिर्महार्होपायनैर्वशीकृत्य चाकणकोण्डने दुर्गपालौ तदधिष्ठितौ दुर्गौ सम्पादनीयौ । अहमपि नयेन पुरन्दरदुर्गपालमसारकृत्वा दुर्गं स सुपेप्रान्ताधिपं मातुलं निगृह्णामि ।

तोरणदुर्गपाल—चिरंजीव वत्स! भगवती तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करें (जाता है।)

शिवराज—भाग्य से तोरणदुर्ग हमारे अधिकार में आ गया। इस प्रकार कार्य के प्रारम्भ में यदि बिना किसी कठिनाई के सिद्धि प्राप्त होती है तो निश्चित ही वह पूर्ण होगा, कोई भी विघ्न नहीं हो सकता। २८

तानाजी—भवानी के अनुग्रह से आपके लिए कुछ भी कठिन नहीं है।

एसाजी—कुमार, तोरणा दुर्ग के रूप में आपने साम्राज्य-रूपी श्रीमन्दिर का सिंहद्वार ही प्राप्त कर लिया है। अतः आगे भी हम आपकी कुशलता ही देखते हैं।

शिवराज—मित्रों, आप सबकी सहायता से हमारी साम्राज्य सिद्धि पास ही है। इसलिए आप लोग उपहार देकर चाकण और कोण्डे दुर्गपालों को वश में कर दुर्गों पर अधिकार करें, मैं भी कूटनीति द्वारा पुरन्दर दुर्ग पर अधिकार करके सुपेप्रान्ताधिप दुराचारी अपने मातुल को अधिकारच्युत करता हूँ।

सर्वे—यदाज्ञापति कुमारः ।

शिवराज.—साधयामस्तावत्स्वनियोगमनुष्ठातुम् ।

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

समाप्तोऽयं साम्राज्योपक्रमनामा
प्रथमोऽङ्कः ।



सभी—कुमार की जैसी आज्ञा ।

शिवराज—चलो, अपने-अपने कर्तव्य को पूरा करने का प्रयास करें ।

(सभी चले जाते हैं)

साम्राज्योपक्रम नामक
पहला अंक समाप्त ।



द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्येसाजीस्तानाजीश्च)

एसाजी—अप्यभिनन्दितं देवस्याधिपत्यं चाकणदुर्गपालेन ।

तानाजीः—अथ किम् । अपि च तस्य राजनिष्ठापरितुष्टेन देवेन पुनः स एव तस्याधिकारपदे स्थापितः ।

एसाजीः—मयाऽपि स्वामिनियोगानुरोधेन महार्हेत्कोचप्रदानेन वशीकृत्य कोण्डनेदुर्गपालं तत्र प्रवर्तितं महाराजशासनम् ।

तानाजीः—देवेनापि परस्परविनाशायोद्यतान् पुरन्दरदुर्गपालात्मजाननुकूलान्विधाय रिक्थांश विभागेन च सान्त्वयं स्वायत्तीकृतः पुरन्दरदुर्गः । अनन्तरं च सहसा विजित्य स्वामिना कारागृहे निक्षिप्तो दुर्विनीतो निजमातुलः ।

दूसरा अंक

(उसके पश्चात् एसाजी और तानाजी का प्रवेश)

एसाजी—क्या चाकण दुर्गपाल ने देव का आधिपत्य स्वीकार कर लिया ?

तानाजी—स्वीकार कर लिया । और उसकी राजनिष्ठा से संतुष्ट होकर देव ने पुनः उसे उसी अधिकारपद पर नियुक्त कर दिया ।

एसाजी—मैंने भी स्वामी की आज्ञा के अनुसार बहुमूल्य उत्कोच (घूस) देकर कोण्डने दुर्गपाल को वश में करके वहाँ महाराज का शासन स्थापित कर दिया ।

तानाजी—देव ने भी, एक दूसरे के नाश-हेतु उद्यत पुरन्दर दुर्गपाल के पुत्रों को अनुकूल कर उनकी पैतृक-सम्पत्ति को उनमें विभाजित करके पुरन्दर दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया । और उसके बाद स्वामी ने सहसा दुर्विनीत अपने मातुल को जीतकर कारागार में छोड़ दिया ।

शिवराज —रेचयंतान्यत्र शिलापट्टे ।

शिल्पिमुख्य—तथा [इति रेचयित्वा निष्क्रामति]

नेताजी —देव बहुमूल्यो लक्ष्यतेऽयं महानिधिः ।

शिवराज —अये नैव निधिः किन्तु साक्षात् स्वातन्त्र्यदेवतं वास्मत्पुरतः समुल्लसति । और

अयैहि मैनं पुरतः प्रसारितं, हिरण्यरत्नप्रचयं महानिधिम् ।
एतदमोघायुधसंचयप्रदं, साम्राज्यलक्ष्म्या वपुरेव मूर्तिमत् ॥६

नेताजी —देव, सर्वत्र धैर्यमूलान्येव भद्राणि ।

शिवराज —एवमेतद् । क कोऽत्र भो ।

अङ्गरक्षक —(प्रविश्य) आज्ञापयतु देव ।

शिवराज —मणिकारं द्रष्टुमिच्छामि ।

अङ्गरक्षक— तथा । (इति निष्क्रान्त)

शिवराज—इस शिलापट्ट पर उन्हें खाली करो ।

मुख्यशिल्पी—जो आदेश (भाण्डों को खाली करके जाता है)

नेताजी—देव बहुमूल्य महानिधि है यह ।

शिवराज—ओह निधि नहीं यह तो साक्षात् स्वातन्त्र्य देवी हमारे सामने प्रकाशित हो रही है और

सामने बिखरी हुई इसे हिरण्यरत्न आदि महानिधि की राशि न समझो, यह महाशक्तिमती साम्राज्य लक्ष्मी है जो अमोघ शस्त्रास्त्रों को एकत्र करने के साधन स्वरूप मूर्तिमान हो उठी हैं । ६

नेताजी—देव धैर्य ही सर्वत्र मंगल का मूल है ।

शिवराज—हाँ यही । कौन है यहाँ ?

अङ्गरक्षक—(पहुँचकर) आदेश करें, देव ।

शिवराज—मणिकार को बुलाओ ।

अङ्गरक्षक—जैसी आज्ञा । (कहकर जाता है)

एसाजीः—विक्रमैकरसा हि तेजस्विनामुपक्रमाः ।

तानाजीः—ततश्च स्वामिप्रवृत्तिमुपलभ्य यवनवेशधरः सोऽति-क्रम्यारातिसेनानिवेशं लोहगडदुर्गाधिस्थितेन स्वामिना समगंस्ताभयञ्च सद्य एव स्वामिनो विश्रम्भभाजनम् सम्प्रति खलु द्वित्राण्यहानि तेन सह किमपि मन्त्रयमाणस्तस्मिन्नेव तिष्ठतेऽस्मन्महाराजः ।

एसाजीः—दिष्टया प्रतिक्षणमेधते स्वामिनः प्रभाव ।

तानाजीः—(ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो प्रभाता रजनी । साधयाम-स्तावच्छस्त्रास्त्रपरिचयं कारयितुं नवसैनिकान् ।

एसाजीः—तथा । (इति निष्क्रान्तौ)

इति विष्कम्भकः

(ततः प्रविशति तोरणादुर्गोपवनस्थितः शिवराजः)

शिवराजः—अहो,

एसाजी—तेजस्वी जन का कार्य विक्रम ही से प्रारम्भ होता है ।

तानाजी—उसके बाद स्वामी का समाचार मालूम होने पर वह यवनवेश मे शत्रु-शिविर पारकर लोहगडदुर्ग में स्वामी से भेंट की, शीघ्र ही उनका विश्वासी बना । इस समय दो अथवा तीन दिनो से उसी के साथ कुछ मन्त्रणा करते हुए महाराज दुर्ग मे स्थित हैं ।

एसाजी—भाग्य से स्वामी का प्रभाव क्षण-प्रतिक्षण बढ़ रहा है ।

तानाजी—(ऊपर देखकर) ओह, प्रभात हो गया । चलो नये सैनिको को शस्त्रास्त्र का परिचय करायें ।

एसाजी—ठीक है । (दोनो चले जाते हैं)

विष्कम्भक समाप्त

(इसके बाद तोरणादुर्ग के उपवन मे शिवराज खड़े हैं ।)

शिवराज—अहो,

अपास्य दूर मलिना तमस्विनी, क्षणेन तिर्यक् प्रसृतैर्नवांशुभिः
लताप्रतानाम्रनिकुञ्जमण्डिता; दिवाकरेणारुणिता वनस्थली ॥ २

तथैव स्वातंत्र्यसूर्येणापि रञ्जितानि सह्याचल निवासिनां मावल-जनानां मनांसि । संप्रति तेषां चत्वारिंशत्सहस्राणि प्रविविक्षन्ति मम सेनां निवहम् । किंत्वल्पधनो नोत्सहे तान्विनियोक्तुम् । अपि च द्वीपान्तरादिभ्यागतं संप्राप्तं महान्तं शस्त्रास्त्रसमुच्चयं सार्धलक्षेणाऽपि क्रेतुं प्रार्थयते मां फिरङ्गी वणिक्पतिः । यदृच्छयोपेतोऽयमवसरो मया कथं गृहीतव्यः । अहो

स्वातंत्र्यवह्निज्वलितः समन्ततः, सह्याचलो मोदयते मनो मे ।
वनेचरान् सैन्यगणे नियोक्तुं; न चास्म्यलं तापितरां धुनोति ॥ ३

(पुरतो विलोक्य) एष गृहीतसंकेतो चीर इत एवाभिसर्पति ।

सूर्य ने अपनी तिरछी किरणों के प्रसार से क्षणमात्र में ही रात्रि के मलिन अन्धकार को दूर करके लता, आम्रमञ्जरी और निकुंज से विभूषित वनस्थली को रंजित कर दिया । २

उसी प्रकार स्वातंत्र्य सूर्य द्वारा सह्याद्रि निवासी मावलों का हृदय हर्षित हो उठा है, सम्प्रति उनमें से चालीस हजार जन मेरी सेना में सम्मिलित होना चाह रहे हैं । परन्तु धनाभाव के कारण उन्हें नियुक्त करने का साहस नहीं हो रहा है । और दूसरी ओर द्वीपान्तर (विदेश) से आगत फिरंगी वणिकराज डेढ़ लाख रुपयों में अनेकानेक महान् शस्त्रास्त्र क्रय करने के लिए निवेदन कर रहा है । मैं इस शुभ अवसर का कैसे लाभ उठाऊँ ? अहो—

स्वतन्त्रता की अग्नि से प्रदीप्त सह्याद्रि निवासियों का हृदय, (सह्याद्रिवासी जिनका हृदय स्वातंत्र्य प्रकाश से चमक उठा है) मेरे मन को एक ओर हर्षित कर रहा है, दूसरी ओर मावलों को अपनी सेना में सम्मिलित करने की मेरी असमर्थता मुझे सन्तप्त कर रही है ।

(सामने देखकर) संकेतानुसार यह वीर यहीं आ रहा है ।

नेताजीः—(प्रविश्य) विजयतां देवः ।

शिवराजः—अपि चिन्तितस्त्वया दुर्गसंतरणोपायः ।

नेताजीः—प्रथमं तावदादिशतु देवो मां राजमाचीदुर्गं प्रस्थातुम् । अल्पैरपि भटैरहं नाशयिष्यामि तद्दुर्गावरोधकगणम् ।

शिवराजः—वीर संप्रति तु कथमपि शस्त्रास्त्रपरिक्रयेणाधिष्ठानबलं संनाह्य तदजय्यं विधातुं स्वायत्तीकृतानां च दुर्गाणां प्राकारपरिखादिभिर्दुष्प्रधर्षत्वमापादयितुमतीवोत्कण्ठितोऽस्मि ।

नेताजीः—देव युगपत्समुपस्थितानां व्यवसायानां क्रमेणैवोपपन्नो विनियोगः । तत्पूर्वं राजमाचीरक्षण एव तावदास्थामभिनिवेशयतु देवः । एवमुत्तरोत्तरविजयेन भविष्यति देवस्य साम्राज्यसिद्धिः ।

नेताजी—(पहुँचकर) विजय हो देव ।

शिवराज—क्या तुमने दुर्ग को विजय करने का उपाय सोचा ?

नेताजी—देव । पहले मुझे राजमाचीदुर्ग की ओर प्रस्थित होने का आदेश दें । कुछ ही सैनिकों की सहायता से दुर्ग के अवरोधकों को नष्ट कर लूँगा ।

शिवराज—वीर सम्प्रति तो मैं येनकेन प्रकारेण अपनी वर्तमान सैन्य-शक्ति को सुदृढ़ और शस्त्रास्त्र क्रय कर उसे दुर्जेय बनाने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ। और अपने अधिकार में आये हुए दुर्गों को चहारदीवारी और खाईं आदि के निर्माण द्वारा दुर्लंघनीय बनाना चाहता हूँ ।

नेताजी—देव, समुपस्थित कार्यों को एक एक करके सम्पन्न करना ही उचित है । पहले राजमाचीदुर्ग की रक्षा का उपाय करने की ओर ध्यान दें । इस प्रकार उत्तरोत्तर विजय द्वारा आप एक साम्राज्य स्थापित कर लेंगे ।

शिवराज —(निःश्वस्य) सर्वथा साधनविकलस्य कुतो मे साम्राज्यसंस्थापनसौभाग्यम्। यतः

विना भृतिं भृत्यगणा प्रिया मे विनाऽप्रभित्ति प्रवराश्च दुर्गाः।
विना बलं मे प्रबलोऽन्तरात्मा सर्वेऽवसीदन्ति सह प्रवीर ॥४

केवलमिदानीमवशिष्यते चरमं विधेयम्। त्वया सह भवानीमन्दिरमुपाधिगम्याभीष्टं सम्प्रार्थयितुमद्य प्रातरादिष्टोऽस्म्यहं भगवत्या स्वदेवतया। यदि तत्रापि मे भाग्यविप्लवस्तदानीं तु

त्वय्येव वीराग्रसरे समग्रं निधाय राष्ट्रोद्धरणप्रवृत्तिम्।
अकिञ्चनो दण्डकपालपाणिः परिव्रजिष्यामि परात्मनिष्ठः ॥५

नेताजी —देव धर्मराज्यसंस्थापनोद्धृतकृपाणस्य तवास्मात् एवाय निर्वेद। यत

शिवराज—(निःश्वास छोड़कर) सर्वथा साधनरहित मुझे साम्राज्य स्थापित करने का सौभाग्य कहाँ? क्योंकि मेरे सेवक वृत्ति-(वेतन) के अभाव में अच्छे अच्छे दुर्ग चहारदीवारी न होने के कारण और शक्ति (सैनिक शक्ति) के अभाव में मेरी प्रबल अन्तरात्मा ये सब एक साथ ही भग्न हो रहे हैं। ४

अब एक मात्र करणीय कार्य यह है कि तुम्हारे साथ मैं आज ही प्रातःकाल भवानी के मन्दिर में जाकर अपने अभीष्ट की याचना करूँ, जैसा कि परमशक्ति भगवती का आदेश है। यदि वहाँ भी भाग्य ने साथ छोड़ा फिर तो—

समस्त राष्ट्र के उद्धार का कार्य वीराग्रणी तुम्हारे ही ऊपर छोड़ मैं सर्वशक्तिमान् में निष्ठा रखकर दण्ड और कपाल ले संन्यासी बनकर विचरण करूँगा। ५

नेताजी—धर्मराज्य की स्थापना के लिए कृपाण धारण करने वाले आपके लिए यह चिन्ता [illegible] विषय है ही। क्योंकि कठिनाई

अन्तरायनिकषैः परीक्षिताः, प्राप्नुवन्ति मनुजा महत्पदम् ।
विघ्नविकलधियो निरत्नया, हेलयापि निपतन्त्यधीश्वराः ॥ ६

तद् धैर्यमवलम्ब्य साम्राज्यसंपादनार्थं बद्धपरिकरो भव । तवानुशासनपरेणैव मया वर्तितव्यमित्यादिष्टोऽस्मि भगवता सिद्धतापसेन । न चैतदन्यथा भवितुमर्हति । तद्

अनन्यभावः परदेवतायां, मनः समाधाय लभस्व वाञ्छितम् ।
किमाश्रितः कल्पतरुं कदाचिन्निवर्ततेकोऽप्यनवाप्त कामः ॥ ७

शिवराजः—वीर सम्यगनुबोधितोऽस्मि ।

अङ्गरक्षक—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

शिवराजः—भवानीमन्दिरमार्गमादेशय ।

अङ्गरक्षक—इत इतो देवः । (सर्वे परिक्रामन्ति) एतन्मन्दिरद्वारं तत्प्रविशतु देवः । (इति निष्क्रान्तः)

(बाधाएँ) रूपी कसौटी पर खरे उतरने के पश्चात् मनुष्य महान् पद प्राप्त करता है, विघ्न से शीघ्र व्याकुल होनेवाला सम्राट् भी सरलता से निम्न पद को प्राप्त हो जाता है । ६

इसलिए धैर्य धारण करके साम्राज्य स्थापित करने के लिए कटिबद्ध हो जायें । मुझे सिद्धतपस्वी का आदेश हुआ है कि मैं आपके आदेशानुसार कार्य करूँ । यह कभी अन्यथा नहीं हो सकता । अतः परमशक्तिमान् में अनन्य भाव से हृदय को केन्द्रित करके अभीष्ट की पूर्ति करें, क्या कल्पतरु के आश्रित रहकर भी कोई असफल मनोरथ रहा है । ७

शिवराज—वीर, तू ने उचित स्मरण दिलाया । कौन है यहाँ ?

अङ्गरक्षक—(प्रवेशकर) आदेश करें देव ।

शिवराज—भवानी-मन्दिर के मार्ग का निर्देश करो ।

अङ्गरक्षक—इधर से, इस ओर से देव (सभी घूमकर चलते हैं) यह है मन्दिर का द्वार, चलें देव । (चला जाता है)

शिवराजः—वीर अत्र स्थित्वा मां प्रतिपालय । यावदहं भगवती-माराध्य प्रत्यावर्ते ।

नेताजी—तथा (इति द्वारदेशमधितिष्ठति)

शिवराजः—(मन्दिरं प्रविश्य साश्रु साष्टाङ्गं प्रणिपत्य स्तौति)

(कर्णाटिरागेण त्रितालेन गीयते)

तारय तव सुतमम्ब ! भवानि !!

प्रबलयवनरिपुगलितविभवम् ।
प्रलयपयोनिधिविलुलितनावम्;
पालय परमभुजाभि ।।तारय० ।। १

त्रिभुवनभुवने भवने तव वास,
त्रिजगद्रमा हृतदिव्यविलासः ।
पारय मम विषमाणि ।।तारय०।। २

त्वमसि ममैक परम शरणम् ।
नश्यति यदि हृतमायोद्धरणम् ।
हारय विघ्नशतानि ।। तारय० ३

वितरसि यदि नहि करुणालेशम् ।
धृत्वा ममाटनं पतिवेशम् ।
निश्चितमपि शर्वाणि ! ॥ तारय० ॥ ४

(आकाशे)

मा शुचः सहायसाध्यास्ते सिद्धय: ।

शिवराजः—(आकर्ण्य) शरणागतवत्सले त्वदनुग्रहपरवशा एव मे प्रार्थितसिद्धयः । (प्रणम्य द्वारदेशमुपसृत्य) वीर त्वदधीना मे सिद्धयः इति भगवत्या आदेशः । सम्ममाङ्गरक्षकबलेनाक्रम्य बीजापुर प्रदेशामाहरापेक्षितं हिरण्यसंचयम् ।

नेताजीः—देव पुरोवर्तिजीर्णदेवालयकोणप्रस्तरप्रच्छन्नो महान् निधिस्तत्रमोत्खातव्य इति मम पुनरान्तरः प्रत्ययः ।

शिवराजः—न मृषा भवितुमर्हति तवायं प्रतिभासः । यतः

हे शर्वाणि ! यदि तुम अपनी करुणा-दृष्टि मेरे ऊपर नहीं डालती तो निश्चित है कि मैं यतिवेश में भ्रमण करूँगा ।४

(आकाशवाणी) निराश न हो, सहायकों द्वारा अभीष्ट सिद्ध होगा ।

शिवराज—(सुनकर) हे शरणागतवत्सले । तुम्हारे अनुग्रह पर ही मेरे कार्य की सिद्धि निर्भर है । (प्रणाम कर, द्वार पर पहुँच) वीर, भगवती का आदेश है कि मेरे कार्य की सिद्धि तुम्हारे अधीन है । अतः मेरे अंगरक्षक के साथ बीजापुर पर आक्रमण करके अपेक्षित धन आदि एकत्र करो ।

नेताजी—देव, सामने स्थित जीर्ण मन्दिर के कोने में खोदवाएं तो प्रस्तर से ढकी हुई विशाल धनराशि प्राप्त होगी, यह मेरा गहरा विश्वास है ।

शिवराज—तुम्हारा दृष्टिकोण असत्य नहीं हो सकता । क्योंकि

संयतेन्द्रियमनाः प्रसन्नधीः, प्रत्यगात्मनि च यः समाहितः ।
तस्य यत्स्फुरति भाविदर्शनं नैव तद्भवति संशयास्पदम् ॥८

कः कोऽत्र भोः ।

अङ्गरक्षकः—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देव ।

शिवराजः—शिल्पिमुख्यं द्रष्टुमिच्छामि ।

अङ्गरक्षकः—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—वीर मायेरानयतीन्द्रवचसा खलु प्रोत्साहितोऽस्मि ।

शिल्पिमुख्यः—(प्रविश्य) विजयतां देव ।

शिवराजः—(जीर्णदेवालयं निर्दिश्य) तत्र खनित्वा यदुपलभ्येत तत्सत्वरमिहाहर ।

शिल्पिमुख्यः—तथा । (इति खनित्वा भाण्डान्याहृत्य) दिष्ट्याऽधिगतान्येतानि द्रव्यपूर्णानि भाण्डानि निखातभूमिविवरात् । (इति स्थापयति)

संयतेन्द्रिय, स्थिर और प्रसन्नचित्तवाले व्यक्ति के मन में भविष्य ज्ञान प्रतिभासित होता है, वह सन्देहास्पद नहीं हो सकता । ८

कौन, कोई है ।

अङ्गरक्षक—(पहुँचकर) आज्ञा देव ।

शिवराज—प्रमुख शिल्पी को देखना चाहता हूँ ।

अङ्गरक्षक—जैसी आज्ञा । (कहकर जाता है)

शिवराज—वीर, मैं वस्तुतः मायेरान के यतीन्द्र-वचनों से ही प्रोत्साहित हुआ हूँ ।

मुख्यशिल्पी—(पहुँचकर) देव की विजय हो ।

शिवराज—(जीर्ण देवालय की ओर संकेत करके) वहाँ खोदकर जो कुछ भी प्राप्त करो तुरन्त ले आओ ।

मुख्यशिल्पी—जो आज्ञा । (खोदकर भाण्डों को लेकर आता है) भाग्यवशात् खोदी हुई धरती से द्रव्यों से पूर्ण ये भाण्ड प्राप्त हुए हैं । (रख देता है) ।

एसाजीः—अहो दैवं सर्वथाऽनुकूलमिति तर्कये ।

तानाजीः—एवमेतत् । अन्यथा कथं नेताजी सदृशाः प्रवीराः परोक्षेऽपि स्वामिकार्यं साधयेयुः ।

एसाजीः—(सविस्मयम्) अये किमुच्यते । नेताजी तु यवनसैनिकैर्निहत इति लोकप्रसिद्धिः ।

तानाजीः—तं स्वपगतचेतनं मत्वा परावृत्ते यवनसैनिकगणे प्रकृतिमापन्नः स प्रच्छन्नमुपेत्य मायेरानयतीन्द्रं तदधिगतशस्त्रास्त्रप्रयोगकौशलस्तदादेशानुरोधेन साम्राज्यसंस्थापनोद्यतं स्वामिनमन्वेष्टुं यतिच्छद्मना राजमाचीदुर्गं प्रतिष्ठत । मार्गे च तद्दुर्गमवरोद्धुं नियुक्तस्य बीजापुरसैन्यस्य नायकं बन्दीकृत्य

यतिवसनधरो दृढायताङ्गः, प्रबलरुषाज्वलितः स कुन्तपाणिः ।
नियमितयवनेशसादिपुष्टः, सरभसमेत्य विवेशराजदुर्गम् ॥ ९

एसाजी—अहो, फिर तो दैव सर्वथा अनुकूल है ।

तानाजी—हाँ, अन्यथा कैसे नेताजी सदृश वीर स्वामी के कार्य को गुप्तरूप मे रहकर भी संपादित करते ।

एसाजी—(विस्मय से) अरे क्या कहते हो ? नेताजी तो यवन सैनिकों द्वारा मारे जा चुके, ऐसी प्रसिद्धि है ।

तानाजी—यवन सैनिकों ने उसे मृत जानकर छोड दिया, उनके जाने के पश्चात् जब वह चैतन्य हुआ तो प्रच्छन्नरूप से मायेरान-यती के पास पहुँचा, उनसे शस्त्रास्त्र विद्या मे कुशलता प्राप्त की और उनके आदेशानुसार साम्राज्यसंस्थापनार्थ उद्यत स्वामी को यती के वेश में ढूँढने के लिए राजमाची दुर्ग मे स्थित हो गया । मार्ग में उस दुर्ग को आक्रान्त करने के लिए नियुक्त बीजापुर सैनिकों के सेनापति को बन्दी बनाकर—

यतिवेश धारण किये हुए, पुष्ट शरीर क्रोध एवं तेज के कारण भयानक, हाथ में भाला लिए, यवनेश-सैनिक (अश्वारोही) से सेवित वह बलपूर्वक राजमाचीदुर्ग मे प्रविष्ट हुआ । ९

छत्रपतिसाम्राज्यम्

प्रथमोऽङ्कः

उत्तुङ्ग सुरनिम्नगावलयित नानामृगं सङ्कुल,
सम्भ्रान्तमृगयुर्द्रुत हिमवत शृङ्गान्तरे शृङ्गत ।
सानन्द विजयाय सव्यविजितो दिव्य निजास्त्र दिशन्
युष्मानेष पिनाकपाणिरवताल्लीलाकिरात शिव ॥ १

उत्तुङ्गमिति—एष, पिनाक, पिनाकाख्य धनु पाणौ यस्य स पिनाकपाणि लीलयाकिरात, लीलाकिरात, मृगान् यातीति मृगयु शिव उत्तुङ्ग, उच्च, सुरनिम्नगावलयित, सुरापगापरिवृत नानामृगं सङ्कुल व्याप्त, हिमवत हिमालयस्य शृङ्गत शिखरात् अन्यत शृङ्ग, शृङ्गान्तर, द्रुत, क्षिप्र, सव्येन, बलोत्कर्षेण विजित प्रसान्नि हृदयं, अर्जुनाय, पाथपुत्राय सानन्द दिव्य निजास्त्र पाशुपतास्त्र दिशन्, उपदिशन् युष्मान् रक्षतु । अत्र शिवपदेन शिवराज शृङ्गान्तर शृङ्गत इत्यनेन नानादुर्गाक्रमण, नानामृगं सङ्कुल इत्यनेन नानारिपुगणावेष्टितत्वं मृगयुपदेन रिपुदलानुसरण, विजयाय दिव्य निजास्त्र दिशन् इत्यनेन मन्त्रादिभ्यो, लीलाकिरातपदेन च किरातवत् सह्याद्रिकानन पर्यटन सूच्यते । पिनाकपाणिपदेन, वीररसस्याङ्गित्वमिति ।

भगवान् शंकर जो लीलापूर्वक (स्वेच्छया) किरातवेश धारण कर, हाथ में पिनाक (धनुष) लिए, अनेक पशुओं से पूर्ण एवं करुणा के सदृश गंगा को लपेटे हिमालय के एक से दूसरे (उच्च) शिखर तक द्रुतगति से हरिणों का अनुसरण करते, और बलोत्कर्ष से सन्तुष्ट होकर, अर्जुन को विजय के लिए अपना पाशुपत अस्त्र देते हैं—आप सबकी रक्षा करें । (शार्दूलविक्रीडित छन्द)

नान्द्यन्ते

सूत्रधार—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये, अलमतिपरिश्रमेण । इतस्तावदागम्यताम् ।

नटी:—(प्रविश्य) इयमस्मि । आज्ञापयत्वार्यपुत्रः ।

सूत्रधार—अद्य खलु नटपुरवास्तव्यमूलशङ्करविरचितेनछत्रपति-साम्राज्याख्येन नवेन नाटकेनैषा परिषत्सभाजनीया । तत्प्रस्तूयतां तावन्मल्लाररागेण स्वरतालबद्धा कापि रमणीया गीतिः परिषच्चेतो-रञ्जनाय । सम्प्रति खलु—

तपनांशुतपनशमनो ऽनिलचपलश्चञ्चलोल्लसितमेघ.
गर्जति वर्षति विकिरति वनचरनिकरान् प्रसादयति लोकान् ।। २

नटी—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (इति गायति)

(नान्दी के पश्चात्)

सूत्रधार—(नेपथ्य की ओर देखकर) आर्ये बहुत परिश्रम न करो । आओ, इधर आओ ।

नटी—(प्रवेश कर) यह आ गयी मैं । आज्ञा दें आर्यपुत्र ।

सूत्रधार—आज नटपुरनिवासी मूलशकर लिखित छत्रपति—साम्राज्य नामक नवीन नाटक द्वारा इस परिषद् का मनोरजन होना चाहिए । अतः मल्लार-राग मे, स्वर और तालबद्ध कोई सुन्दर गीत, सभा के मनोरजनार्थ प्रस्तुत करो । इस समय तो—

सूर्य के ताप को शान्त करनेवाले मेघ, वायु के कारण इधर-उधर घूमते हुए चंचल विद्युल्लता से प्रकाशित होते, गर्जन के साथ जल-वर्षा करके, वनचर-समूह को तितर-बितर और मनुष्यों को आनन्दित करते हैं ।

नटी—जो आर्यपुत्र की आज्ञा । (गाती है)

(मल्लाररागेण त्रितालेन गीयते)

रसयति रसयति रसा विशाला ।
विचलति चपलपयोधरमाला ॥
भवति सपदि जनतापविलयनम् ।
मृग्यति मृगपतिरुपरि निलयनम् ॥ रस० ॥ १
नमयति तरुगणमलमासार ।
क्षुभ्यति गर्जति पारावार ॥ रस० ॥ २
नन्दति मुदितो जनपदलोक ।
जलदविलोकनविगलितशोक ॥ रस० ॥ ३

सूत्रधार—(परिषदभिमुखमवलोक्य) आर्ये, एष स्वामभिनन्दति तव सङ्गीतकलाकौशलेन समाराधितो रङ्ग ।

नटी—आर्यपुत्र सत्यम्

शिष्या यदुत्कर्षमवाप्नुवन्ति,
प्रभाव एवैष गुरोरमोघ ।

(मल्लार राग में त्रितालबद्ध गीत)

विशाल धरती जल का भूरि-भूरि आस्वादन करने लगी, चपल मेघों का दल इधर-उधर घूम रहा है। तुरन्त लोक का ताप नष्ट हो रहा है, सिंह पर्वत के उच्च भाग में शरण ढूढने लगा। जल-बूदों के भार से वृक्षों का समूह नत हो रहा और विशाल सागर उफनाने लगा है। मेघदल को देखने के कारण अपने शोक को विस्मृत कर मनुष्य आनन्दित हो रहे हैं।

सूत्रधार—(सभा को देखकर) आर्ये, यह सभा तुम्हारे इस सगीतकलाचातुरी से आनन्दित हो तुम्हे धन्यवाद दे रही है।

नटी—आर्यपुत्र ! यह सत्य है कि—

शिष्य यदि उत्कर्ष को प्राप्त होता है तो यह गुरु का अमोघप्रभाव ही है,

जात. प्रतापोद्धतकौरवाणां;
कृष्णोपदिष्टो हि जयो विजेता ॥ ३

सूत्रधार —(आकर्ण्य) आर्ये, शृणु तव गीतप्रकर्षेणोज्जृम्भितस्य नवजलधरस्यैतन्मन्दगर्जितम् ।

नटी—(सस्मितम्) आर्यपुत्र, नास्त्येतन्मेघगर्जितम् । किन्तु सम्प्रति भूभारावताराय तपनान्वये शङ्कराशेनावतीर्णः शिवराजः । स्वातन्त्र्यभावनया समिद्धः

पित्रोर्गुरोश्चाधिगतार्थ विद्यो,
वीरानुरक्तैः सवयोभिरावृतः ।
स्वराज्य संस्थापननिश्चितव्रतो,
गर्जत्ययं केसरिणः किशोरः ॥ ४

(इति प्रस्तावना)

कृष्ण से उपदिष्ट होकर ही अर्जुन ने ऐश्वर्य के अभिमानी कौरवों पर विजय प्राप्त की थी ॥ ३

सूत्रधार—(सुनकर) आर्ये सुनो, तुम्हारे गीतराग से आकृष्ट हुआ नव जलधर मन्द गर्जन कर रहा है ।

नटी—(मुसकरा कर) आर्यपुत्र, यह मेघ-गर्जन नहीं है । बल्कि, धरती के भार को कम करने के लिए इस समय सूर्यवंश में शंकर के अंश से युक्त शिवराज अवतीर्ण हो गए हैं । स्वातन्त्र्यभावना से समुल्लसित—

पिता और गुरु के समीप में राजनीति का अध्ययन करने वाला, वह, जिसमें वीरों और समवयस्क मित्रों का अनुराग है, (जो वीरों तथा समवयस्क मित्रों से सनाथ है) स्वराज्य-स्थापना का दृढ़व्रती, केसरीकिशोर गरज रहा है । ४

(प्रस्तावना समाप्त)

(ततः प्रविशति वयस्यैः सह शिवराजः)

एसाजी—अहो किंनु खलु

प्रवर्तित धर्मभुवनैकचक्र-
मूर्जस्वलं धर्मनयोपबृंहितैः ।
ते भारतीया यवनैरुपमर्दिता,
नष्टप्रभा नाम्न्यभिधानशेषताम् ॥ ५

तानाजी—वयस्य स्वोदर पूरणार्थं यवनेशमुपाश्रिता वयमेव तत्र कारणम् ।

बाजी—अस्थान एव तावदयमुपालम्भः । यतो मिथोविद्वेषविभिन्नानामस्माकं यवनेशाश्रयं विना काऽन्या गतिः सम्भाव्यते । सम्प्रति तु तैरेव सुनियन्त्रिता वयं सुखेन कालं यापयामः ।

एसाजी—उदारचरितानस्मन्नृपतिगणान् कूटप्रपञ्चैरुन्मूलयद्भिस्तैः किं न्याय्यमाचरितम् ।

(मित्रों सहित शिवराज का प्रवेश)

एसाजी—ओह, ऐसा क्यों है कि—

भारतीय, जो धर्म और नीति ज्ञान से समृद्ध हो कर भुवन-साम्राज्य (समस्त संसार) के प्रवर्तक अर्थात् समस्त संसार के शासक रहे, आज वही भारतीय जन यवनों से पीड़ित हो, अपने तेज को नष्ट कर नाममात्र को शेष रह गए। ५

तानाजी—अपने उदर की पूर्ति (स्वार्थ-साधना) हेतु यवनों के उपासक (आश्रित) हम स्वयं इसके कारण हैं।

बाजी—यह आपका उलाहना उचित नहीं है। क्योंकि जब पारस्परिक विद्वेष-भावना से हम आपस में ही कलह करते हैं तो यवनों की शरण के अतिरिक्त दूसरा मार्ग भी कौन है ? इस समय तो हम उन्हीं के नियंत्रण में सुख से समय बिता रहे हैं।

एसाजी—क्या अपनी कूटनीति द्वारा उन्होंने हमारे उदारचरित्र सम्राटों का मूलोच्छेदन कर उचित किया ?

बाजी —न सन्त्यत्रैकान्तेन दोषभाजो यवनेश्वराः। यतः

परस्परोन्मूलन सम्प्रवृत्तान्,
विहाय धर्मं विषयेषु सक्तान्।
निरयं प्रजास्वापहरान्नृपालान्,
निगृह्य तैर्गर्ह्यमनुष्ठितं किम्॥ ६

एसाजी —अरे किमेवं भ्रान्तोऽसि। धर्मच्युतानेतानभिगृह्य किं धर्मराज्यं स्थापितं यवनेश्वरैः। एतेषामपचारपरंपरास्मरणेन जायते मे रोमहर्षं। सम्माननमिषेण राजसभामुपस्थापितस्य सात्मजस्य जाधवरावस्याकाण्डवधेन प्रज्वालितः क्रोधानलोऽद्यापि सर्वत्र भृशं प्रज्वलति।

बाजी —स्वकृतघ्नताया एव फलमुपभुक्तं जाधवरावेण। यवनेश्वरस्तु तत्र निमित्तमात्रम्।

बाजी—इस सन्दर्भ में यवनशासक ही केवल दोषी नहीं हैं क्योंकि—

पारस्परिक द्वेष के कारण एक दूसरे का विनाश करने में रत, धर्मानुसरण का मार्ग त्याग भोग-विलास में अनुरक्त, अपने कर्तव्य से विरत, निरय प्रजा के धन का दुरुपयोग करने वाले नरेशों का नाश करके उन्होंने अनुचित क्या किया? ६

एसाजी—यह आप कैसे भ्रम में पड़ रहे हैं? क्या इन यवनों ने हमारे धर्मच्युत राजाओं का अन्त करके धर्मराज्य स्थापित किया है? इनके अत्याचार-परम्परा के स्मरणमात्र से मुझे रोमांच हो आता है। सम्मान देने के व्याज से सभा में उपस्थित किये गये पुत्र-सहित जाधवराव के अचानक वध से प्रज्वलित क्रोधानल आज भी सर्वत्र भली-भाँति जल रहा है।

बाजी—अपनी कृतघ्नता का ही फल जाधवराव को मिला। यवनराज तो उसमें निमित्त मात्र रहे।

शिवराज —वयस्या, अलं वचनप्रतिवचनं। परमार्थतस्तु न केवल-मेकान्तेन दोषभाजो दुर्वृत्ता यवनेश्वरा किन्तु तत्समधर्माण इदानींतना राष्ट्रद्रुहः क्षत्रेश्वरा अपि। यतः

दुर्वृत्ते नृपतौ तु मंत्रिसचिवास्त्यक्त्वा नियोगं निजं,
स्वच्छन्दं विहरन्ति कामवशगा उद्वेजयन्तः प्रजाः।
राष्ट्रोपप्लवशङ्कयाऽन्यनृपतिं सद्य श्रयन्ते जनाः,
कालेनापचयेन कोशबलयो राष्ट्रं ततो नश्यति॥ ७

तद्वयस्या

उद्धर्तुमेनां परिपीडितां भुवं,
धर्मच्युतं दुर्मदराजसंघं।
साम्राज्यसंस्थापनमन्तरेण,
न वर्ततेऽन्याऽर्थंकरी प्रतिक्रिया॥ ८

अपि चाततायिभ्यः स्वप्रजानिर्विशेषं प्रजानां परिपालनमेव सर्वत्र राज्ञः परमो धर्मः। अतो धर्मराज्यसंस्थापनोद्यतस्य मम—

शिवराज—मित्रो, वाद विवाद समाप्त करो। सत्य तो यह है—केवल यवन-शासक ही दोषी नहीं हैं अपितु राष्ट्रद्रोही क्षत्रियनरेश भी उन्हीं के समानधर्मा हैं। क्योंकि—राजा के दुर्वृत्त हो जाने पर मन्त्री, सचिव सभी अपना कर्तव्य भुला देते हैं—स्वतन्त्र हो जाते हैं और विलास-साधन में रत प्रजा को पीड़ित करने लगते हैं। प्रजा विप्लव के भय से अन्य राजा का आश्रय लेती है और इस प्रकार धीरे-धीरे कोश, बल, राष्ट्र नष्ट हो जाता है। ७

इसलिए मित्रो—इस भूमि को धर्मच्युत, उन्मद शासकों के अत्याचार से मुक्त करने के लिए स्वतन्त्र साम्राज्य-स्थापना के अतिरिक्त अन्य कोई श्रेयस्कर मार्ग नहीं है। ८

और सर्वत्र अत्याचारियों से प्रजा का अपनी औरस सन्तान की भाँति पालन और रक्षा करना राजा का परम धर्म है। अतः स्वराज्य संस्थापना के लिए उद्यत मेरे द्वारा—

दुर्वृत्तभृत्याहित राज्यभारा,
प्रजाद्रुहस्वार्थपरा. कुशीला. ।
क्षत्रेश्वरा वा यवनेश्वरा वा,
सद्यो भविष्यन्ति कृपाणगोचरा ॥ ९

बाजी—कुमार, अपायसमाकुलो हि बलवता विरोधः । यतः

विना विवेकं प्रतिपद्य साहसं,
परापकर्षं किल यश्चिकीर्षति ।
विपद्विभिन्न स जनोऽल्पसाधन,
क्षुब्धार्णवे नौरिव सीदति स्वयम् ॥ १०

शिवराज—वयस्य, साहसेन एव श्री प्रतिष्ठिता । यत

रिपुप्रकर्षेऽप्यनपायसधृति—
जितेन्द्रिय साहस विक्रमोर्जित ।
दिवानिशं यः सततं प्रयत्नवा—
स्तमेव सद्यो वृणुते नृपश्रीः ॥ ११

वे समस्त राजा, (क्षत्रिय अथवा यवन) जो प्रजा का द्रोह करने वाले, दुवृत्त मे रत, स्वार्थसाधन मे तत्पर, अनीतिगामी हैं, शीघ्र मेरे कृपाण के ग्रास बन जायेंगे । ९

बाजी—कुमार, बलवान् से विरोध लेना हानिप्रद होता है। क्योकि विवेकहीन यदि कोई साहस के सहारे शत्रु को अल्प साधनो से पराजित करना चाहता है, वह उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे महासमुद्र म उफान आने पर नौका नष्ट हो जाती हैं । १०

शिवराज—मित्र, साहस से श्री को प्रतिष्ठा है (श्री की प्राप्ति होती है) क्योंकि—राजलक्ष्मी उसी का वरण करती है जो शत्रु के अभ्युदय मे भी धैर्य और साहस नही छोडता, जो जितेन्द्रिय, सतत प्रयत्नशील तथा जो बल-विक्रम का स्थान है । ११

पुराऽपि साहसेनैव स्वायत्तीकृत स्वपितृपैतामहं राज्य पाण्डुनन्दनैः ।

एसाजी —अये तेजस्विना तु साधननिरपेक्षैव साध्यसिद्धि । यत

स्वल्पोऽप्यग्निर्ज्वलयति न किं कानन शैलसस्थ,
मत्तेभेन्द्रान्विदलति न किं लीलया सिंहशाव ।
बालोऽप्यर्को विकिरति न किं ध्वान्तमाराद् क्षणेन,
सर्वत्रैवाप्रतिहतरयस्तेजसा हि प्रभाव ॥ १२

तानाजी —कुमार तेजस्विनामपि साहाय्यमन्तरेण तु सशयितैव कार्यसिद्धि । परन्तु

यथा समन्तात् सरित प्रवाह,
स्रोतांसि सर्वाणि समाविशन्ति ।
तेजस्विन लोकहितैकतत्पर,
तथा स्वय वीरगणा श्रयन्ते ॥ १३

प्राचीन समय मे भी पाण्डवो ने अपने पूर्वजो के राज्य पर साहस से ही अधिकार किया था ।

एसाजी—तेजस्वियो को तो साधन न होने पर भी कार्य-सिद्धि हो जाती है । क्योकि

तेजस्वियो का प्रभाव सवत्र ही अप्रतिम होता है—क्या अग्नि का एक कण भी पर्वतस्थित जगल को भस्म नही कर डालता ? क्या छोटा-सा सिंह-शावक मत्त हाथी को विदीर्ण नही करता क्या बाल सूर्य घने अन्धकार को क्षणमात्र म नष्ट नही कर डालता ? १२

तानाजी—कुमार, तेजस्वियो के लिए भी साहाय्य के अभाव मे कार्यसिद्धि सशयात्मक ही होती है । परन्तु—जैसे नदी के प्रवाह म चारो ओर से स्रोत आकर प्रवेश करते हैं उसी प्रकार लोकहित म तत्पर तेजस्वी व्यक्ति का अनुसरण वीरगण स्वय किया करते है । १३

शिवराज —नास्त्यत्र विसंवादः । लोकहिततत्परस्य तु सन्ति निसर्गसिद्धा । सहाया तद्वृद्धिः प्रकल्पितैरुपायविशेषैरहं

साहाय्यमासाद्य महद्वनौकसां,
ध्रुव विजेष्ये यवनेशमुन्मदम् ।
रघूद्वहाभ्यां कपिसेनया न किं,
दशाननस्यापि कृता निरन्वयता ॥ १४

अनुचर —(प्रविश्य) विजयतां कुमार । स्वभगिनीमानयतस्तस्य ग्राम प्रापयन्त नेताजी मार्गे समाक्रम्य सद्यास्थव च स निहत्यापहृता तस्य भगिनी बीजापुरसैनिकैः । (इति निष्क्रान्तः)

साहाय्यमिति—वने ओकः निवासः येषां तेषां वनौकसां मावलेजनानां, महत् साहाय्यमासाद्य प्राप्य, उन्मदमुन्मत्तं यवनेशं बीजापुरेशं ध्रुवं निश्चयेन विजेष्ये । रघूद्वहाभ्यां रामलक्ष्मणाभ्यां कपिसेनया दशाननस्य रावणस्य, अपि निरन्वयता किं न कृता । अपितु कृतैव । यदि रामलक्ष्मणाभ्यां कपिसेनया दशाननो निहतः तदा वयं सर्वे मिलित्वा मानवसेनया एकाननं बीजापुरेशं ध्रुवं विजेष्यामहे इति ।

शिवराज—इसमें कोई संशय नहीं है । आप लोग सहमत हैं कि लोकहितैषी व्यक्ति को स्वयं ही सहायक और सहायता की प्राप्ति हो जाती है । अतः मैं आप लोगों द्वारा समर्थित उपाय से ही—

वनवासी मावलों की सहायता से निश्चित रूप से बीजापुरनरेश पर विजय करूँगा, क्या राम-लक्ष्मण ने कपि सेना की सहायता से दशानन रावण को निर्वंशहीन नहीं कर दिया था । १४

अनुचर—(प्रवेशकर) कुमार ! जय हो । अपनी भगिनी को गाँव से लाते समय, [illegible] नेताजी को बीजापुर के सैनिकों ने मार डाला और उसकी भगिनी का अपहरण कर लिया । (चला जाता है ।)

शिवराज—(सरोषम्) अरे कथमेतादृशमत्याहितं क्षत्रकुलप्रसूतैरस्माभिर्मर्षणीयम्। वयस्याः

आर्तानां परिपालनाय सहसा शस्त्रं न येनोद्धृतं,
विप्राणां व्रतिनां च वेदविदुषामाराधने न स्थितम्।
राज्ञामुत्पथगामिनां प्रमथने युद्धं न संवादृतं,
क्षात्रं जन्म धिगस्य राघवयशः प्रज्वालिते भारते ॥ १५

तदद्य धर्मराज्यसंस्थापनेन सम्पादनीयमस्मज्जीवितसाफल्यम्।

एसाजी—अभिनन्द्यते कुमारभाषितम्। (दूरं विलोक्य) एष दादोजी देशमुख इत एवाभिवर्तते।

आर्तानामिति—येन आर्तानां पीडितानां परिपालनाय रक्षणाय शस्त्रं न उद्धृतं येन च वेदविदुषां वेदविदां व्रतिनां ब्रह्मचर्यादि व्रतनिष्ठानां विप्राणामाराधने न स्थितं, येन च उत्पथगामिनामुन्मार्गप्रवृत्तानां राज्ञां प्रमथने विनाशे युद्धं न आदृतमस्य क्षात्रं जन्म रामस्य यशसा प्रज्वालिते प्रकाशिते भारते धिक् निन्द्यमेवेत्यर्थः।

शिवराज—(रोष सहित) ओह! क्षत्रियकुलोद्भूत हम लोग इस अपराध को कैसे क्षमा कर सकते हैं। मित्रो—

पराक्रमी राम के यश से प्रज्वलित इस भरत भूमि में जन्म लेनेवाले उस क्षत्रिय का जन्म ही व्यर्थ है, वह सर्वथा निन्द्य है—जिसने आर्तों की पुकार कर सुन उसके रक्षणार्थ तुरन्त शस्त्र नहीं उठाया, जो वेदज्ञ, व्रती ब्राह्मणों की आराधना में प्रवृत्त नहीं हुआ और जिसने अनीतिपालक अनाचारी राजा के विनाशार्थ युद्ध का उपक्रम नहीं किया। १५

अतः हम लोग धर्मराज्य की स्थापना करके अपने जीवन को सफल बनायें।

एसाजी—हमें स्वीकार है कुमार! आपके कथन का हम अभिनन्दन करते हैं। (दूर देखकर) दादोजी देशमुख यहीं आ रहे हैं।

दादोजी —(प्रविश्य) अप्यनामयं कुमारस्य ।

शिवराज —स्वागतं देशप्रमुखप्रवरस्य । समन्तात् प्रवृत्ते लोक-विप्लवे कुतोऽनामयं क्षत्रियाणाम् ।

दादोजी —तथ्यमेवाभिहितं कुमारेण । यतो लोकसंग्रहार्थमेव ध्रियन्ते क्षत्रियस्य प्राणाः । कुमार त्वदधीन एवास्यास्य महतः कार्यस्योपक्रमः । तद्भूविष्याम्यहमत्र यावज्जीवं तव सहायः ।

शिवराज —अनुगृहीतोऽहं भवता सौजन्येन । वयस्या प्रथमं तावदस्माभिर्बीजापुरेशहस्तगता सह्याद्रिदुर्गा कथमपि स्वायत्तीकर्तव्या ।

बाजी —प्रचुर कोशबलाद्योऽयं वर्तते बीजापुरेश्वर । सत्
शक्तित्रयोत्कर्षं समेधितानां,
सामाद्युपायं परिरक्षितानाम् ।

दादोजी—(प्रवेश करके) कुमार कुशल हैं न ?

शिवराज—देशमुख-कुल शिरोमणि का हम स्वागत करते हैं। सर्वत्र जब लोकविप्लव उपस्थित हो तो क्षत्रिय को विश्राम कहाँ ?

दादोजी—कुमार ! सत्य कह रहे हैं । क्योंकि लोकसंग्रहार्थं ही क्षत्रियों ने प्राण धारण किया है । इस महान् कार्य का उपक्रम आपके ही अधीन है कुमार ! अतः हम जीवन पर्यन्त आपके इस कार्य में सहायक रहेंगे ।

शिवराज—आपके सौजन्य के लिए हम आभारी हैं । मित्रो, सर्व प्रथम, बीजापुरनरेश द्वारा हस्तगत सह्याद्रि-दुर्गों को अपने अधिकार में करना चाहिए ।

बाजी—बीजापुरनरेश प्रचुरकोश एवं शक्तिशाली है । अतः तीनों शक्तियों के उत्कर्ष से समृद्ध, साम, दाम, दण्ड, भेद चारों उपायों से

षाड्गुण्ययोगोन्मथितद्विषा किं,
विद्वेषतः श्रेय उपाश्रयेम् ॥ १६

एलाजीः—बलवतामप्यभिभवायोज्जृम्भते परा संघशक्तिः । यतः

प्रभावमुख्या न हि शक्तयस्तथा
संपादयन्तीप्सितकार्यं सिद्धिम् ।
यथा रिपौ कोशबलप्रमत्ते,
नयप्रयुक्ता परसंघशक्तिः ॥ १७

तानाजी.—उदात्तचरितानामेव परिपन्थिनामभियोग उपयुक्ता एताः शक्तयो न क्षुद्रमनानाम् । अपि च

मन्त्रगुप्तिविरहाद्विगलत्संघो,
युक्तिस्तु भवत सुखभेद्यौ ।

प्रभावेति—प्रभाव मुख्य प्रधान. यासु ता. प्रभुमन्त्रोत्साहशक्तय. कोशबलाभ्यां प्रमत्ते रिपौ तथा ईप्सितकार्यसिद्धिं न संपादयन्ति यथा नयेन अर्थशास्त्रविहितरीत्या प्रयुक्ता परा उत्कृष्टा चासौ संघशक्तिश्च कार्यं संपादयतीत्यर्थः । १७

रक्षित और राजनीति के छह गुणों के सहारे अपने शत्रु को पराजित करनेवाले शक्तिशाली से शत्रुता करके हमें क्या लाभ होगा ?

एलाजी—सब शक्तियों से उत्कृष्ट संघशक्ति शक्तिशाली को भी पराजित होने के लिए विवश कर सकती है—क्योंकि, कोशबल से प्रमत्त शत्रु के लिए तीन शक्ति ((मन्त्रोत्साहादि) उतनी प्रभावक नहीं हैं जितनी कि नीति-विहित गठित संघशक्ति । १७

तानाजी—ये शक्तियाँ तो उदारचरित शत्रु से संघर्ष करने के लिए उपयुक्त हैं न कि क्षुद्र शत्रु के लिए । और भी—मन्त्र भेदादि की सहायता से केवल क्षत्रिय, वणिक् आदि के गणों को विच्छिन्न करना

माययाऽधमपरप्रतिघात,
श्रेयसे नयविदा नृपतीनाम् ॥ १८

तत्पञ्चमोपायमात्रसाध्यः भविष्यन्त्यधमारातयः ।

शिवराज—ममाप्येतदेवास्त्यभिमतम् । यतः

परे तु तेजस्विनि धर्म्यवृत्तौ,
सामाद्युपाया सफला भवन्ति ।
न विद्यते दुर्नयशालिनो जये,
मायाप्रयोगादपरा प्रतिक्रिया ॥ १९

अपि च

धर्मतः प्रतिविधानमात्मनो,
विप्लवाय कुप्रिमायुते रिपौ ।
विष्णुनाऽपि बलिनः सुरद्विषः,
घातिताः प्रतियुगं स्वमायया ॥ २०

मन्त्रेति—गणः क्षत्रियाणां, वणिजां वा, संघः जानपदानां तो जनस्य गुप्ते रक्षणस्य विरहात् मनभेदादिरथयं युक्तिः सामाद्युपायैः सुखभेद्यो भवतः । अतः मायया, छलप्रयोगैः अधमः परः रिपुः तस्य प्रतिघातः नयविदां नृपतीनां श्रेयसे भवतीत्यर्थः ॥ १८

सहज है परन्तु अधम शत्रु से मुकाबला करने के लिए नीतिज्ञ नृपति द्वारा छल, माया का सहारा लेना परम श्रेयस्कर है। १८

अतः अधम शत्रु का विनाश पंचमोपाय माया आदि से ही साध्य होगा।

शिवराज—मेरा भी अभिमत यही है। क्योंकि—धर्मवृत्तिवाले तेजस्वी शत्रु के समक्ष ही सामदामादि उपाय सफल होते हैं और दुर्नीतिगामी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए माया प्रयोग के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है। १९

और भी—पापवृत्ति शत्रु के विरुद्ध धर्मनीति का व्यवहार स्वविनाश का कारण होता है—भगवान् विष्णु ने भी बलशाली असुरों के विनाश के लिए अपनी माया का प्रयोग हमेशा किया था। २०

सर्वे.—सर्वथा अभिनन्द्यते कुमारवचनम् ।

शिवराज —तवैष भवन्मित्रपदमारूढोऽहमद्य प्रतिजाने यत्

मानं धनं राजविलासभोगान्,
मित्राणि दारानपि जीवितं च ।
हुत्वा रिपुज्वालितहव्यवाहने,
संस्थापयिष्ये मम धर्मराज्यम् ॥ २१

सर्वे—कुमार, एतद्भीष्मप्रतिज्ञासिद्धये बद्धपरिकरानस्मान्

दुर्भेद्यदुर्गाक्रमणे प्रयाणे,
रणाङ्गणे दुष्करसाहसे वा ।
अवेहि राजस्तव पार्श्ववर्तिन,
स्वजीवितेऽस्मिन्निरपेक्षता गतान् ॥ २२

शिवराज —वयस्या भविष्यन्ति भवन्त एवाधिकारपदभागिनो मम धर्मराज्ये । यत

सभी—कुमार का कथन सर्वथा अभिनन्दनीय है ।

शिवराज—अत आपका मित्र मैं घोषणा करता हूँ कि शत्रु के द्वारा प्रज्वालित रणरूपी अग्नि यज्ञ मे मैं अपने मान, सम्मान, धन, भोग विलास, मित्रो, पत्नी और प्राणों तक की आहुति देकर अपने धर्मराज्य की स्थापना करूँगा ॥ २१

सभी—कुमार, आपकी इस भीष्मप्रतिज्ञा की सिद्धि-हेतु हम कटिबद्ध होकर—

दुर्भेद्यदुर्गों के ऊपर आक्रमण करते समय, रणांगण में प्रस्थान-समय अथवा अन्य दुष्कर एवं साहसी कार्यों मे, राजन् ! अपने प्राणों तक की चिन्ता बिना किये आपके पार्श्ववर्ती रहेंग, ऐसा समझें ॥ २२

शिवराज—मित्रो, मेरे धर्मराज्य में आप सब अधिकार पद के भागी होंगे । क्योंकि—

समानविद्यानयविक्रमेषु ।
राष्ट्रैकभक्तिप्रथितान्वयेषु ।
जितेन्द्रियेष्वेव निजाधिकारं;
विभज्य साम्राज्यमुपैति भूमिप ॥ २३

(ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेण दादाजीकोंडदेवः)

शिवराज —(सप्रश्रयम्) स्वागतं भगवते ।

दादाजी —वत्स, विरमास्मात्साहसाध्यवसायात् । एवं कुलक्रमागतवृत्तिपरित्यागात् तवानर्थापत्तिरेवेति सर्वथे ।

शिवराज —भगवन् यवनेशविद्वेषप्रभवाबनर्थशतावपि श्रेय एवेति मे बलवान् प्रत्ययः । यतः

धर्मेति—धर्मस्य ध्वसः विनाशः तदर्थं धृतः व्रतः यैः तान् पण्यने लुब्धान् मृदौ निर्दयान् क्रूरान् विक्रमशालिनि मन्दान् नम्रान् प्रतिभटे कूटप्रयोगैः छलप्रयोगैः उत्कटान् उग्रान् स्वस्मिन् विश्वस्ते अपि हिंसकान् वधोद्यतान् कुलवधूना सकर्षणे अपहरणे लोलुपान् गोविप्रेषु अपकारिणः देवद्विषः इमान् यवनेश्वरान् वयमहं सहे ।

विद्या, नीति, पराक्रम, राष्ट्रभक्ति, प्रतिष्ठित कुल में उत्पन्न जितेन्द्रियों में अपने अधिकार का समान विभाजन करनेवाला राजा ही साम्राज्य सत्ता को सुदृढ़ कर सकता है । २३

शिवराज—(नम्रता से) आपका स्वागत है ।

दादाजी—वत्स, इस दुस्साहसपूर्ण प्रतिज्ञा को छोड़ दो । इस प्रकार कुलक्रमागत वृत्ति के परित्याग से आपके ही अनर्थ की सम्भावना हो सकती है ।

शिवराज—भगवन्, शतशः अनर्थों को उत्पन्न करनेवाली भी यवनेश की यह शत्रुता हमारे लिए श्रेयस्कर है । क्योंकि—

शिवराज —सम्प्रति प्रभविष्याम्यहं सन्नाहयितुं मम वीरनिवहान् । अथ कियत्परिमाणोऽयं निधिः परिकल्प्यते ।

नेताजी —देव, पर्याप्त एवायमस्मत्प्रयोजनाय ।

मणिकार —(प्रविश्य) विजयतां देव ।

शिवराज —अवधार्यतामस्य कोशसञ्चयस्य मूल्यपरिमाणम् ।

मणिकार —(निरीक्ष्य) देव सूक्ष्मानेनायं दशलक्षहिरण्यार्घो भवितुमर्हति ।

शिवराज —तावत्पत्र मारोप्य विस्तरेण यथावस्य मूल्य परिच्छेद-व्यञ्जक परिसङ्ख्यानम् ।

मणिकार —तथा । (इति यथोक्तं कुरुते)

शिवराज —धीर महानेषोऽनुग्रह परदेवतायाः । यतः सम्प्रति खलु मम ।

शिवराज—अब मैं सेना तैयार करने योग्य हो गया । तुम इस निधि को कितने मूल्य की अनुमान करते हो ।

नेताजी—देव, हमारे प्रयोजन के लिए यह पर्याप्त है ।

मणिकार—(पहुँचकर) विजय हो देव ।

शिवराज—इस धनराशि का मूल्य अनुमान करो ।

मणिकार—(निरीक्षण करके) भलीभाँति निरीक्षण करने पर यह लगभग दस लाख मूल्य का प्रतीत होता है ।

शिवराज—इसके मूल्य का परिमाण मुझे विस्तार से लिखित रूप में दे दो ।

मणिकार—जो आज्ञा । (कथनानुसार करता है)

शिवराज—धीर, शक्तिमान का परम अनुग्रह है यह । क्योंकि इस समय मेरी—

शस्त्रास्त्रसन्नद्धरणोत्सुका भटा, सद्य पराहत्य परप्रवीरान् ।
अत्युत्कट मर्मविदारणं द्विषां प्रकाशयिष्यन्त्यतुलं पराक्रमम् ॥१०

अङ्गरक्षक —(प्रविश्य) एष द्विभाषसमेत फिरङ्गी देव द्रष्टुमिच्छति ।

शिवराज —शीघ्रमेव प्रवेशय ।

अङ्गरक्षक — तथा । (इति निष्क्रान्त)

द्विभाष —(फिरङ्गिणं निर्दिश्य) एष महाराजं सुप्रभातमावेदयति ।

शिवराज —प्रीतोऽस्म्यस्य समुदाचारेण । क्रीतो मया सार्धलक्षेणायुधसञ्चय इति समावेदय ।

द्विभाष .—तथा । (इति यथोक्तं कुरुते)

शिवराज —अपि सुव्यवस्थितोऽयं व्यवहार ।

द्विभाष —अथ किम् । एष पुनर्महाराजस्यानुग्रहमभिमत्य गमनायानुज्ञां याचते ।

सेना के वीर जो युद्ध करने के लिए सन्नद्ध और उत्सुक हैं, शस्त्रास्त्रों से सज्जित हो अपने पराक्रम को अधिक सफलता से दिखला सकेंगे और उनका शौर्य शत्रु के मर्म को विदीर्ण करेगा ।१०

अङ्गरक्षक—(प्रवेश कर) द्विभाषिए के साथ विदेशी, देव का दर्शन चाहता है ।

शिवराज—तुरन्त उपस्थित करो ।

अङ्गरक्षक—जो आज्ञा । (जाता है)

द्विभाषी—(विदेशी को दिखाकर) यह महाराज को प्रात का नमस्कार निवेदन कर रहे है ।

शिवराज—मैं इसके व्यवहार से प्रसन्न हूँ । कह दो कि मैंने इसके शस्त्रास्त्रों को डेढ़ लाख में खरीद लिया ।

द्विभाषी—अस्तु जो आदेश । (कहता है)

शिवराज—क्या यह व्यवस्था मान्य है ?

द्विभाषी—जी हाँ । आपके अनुग्रह का आभार मानते हुए जाने की आज्ञा चाहते हैं ।

मणिकार —(उपसृत्य) एतत्सविस्तरं परिसंख्यानम्।

(इति पत्रमर्पयति)

शिवराज —(पत्रमादाय वाचयित्वा) द्विभाष आगामुकमप्यायुधसञ्चयं वयमेव क्रेष्याम इति वणिक्पतिमवगमय।

द्विभाष —तथा। (इति यथोक्तं कुरुते)

शिवराज —अये मणिकार प्रापयैतावावेशिकमन्दिरम्। मद्वचनाच्चोच्यतां तत्राधिकृतोऽध्यक्षो यदयं वैदेशिकः सपरिवारमातिथ्येन सम्माननीय इति।

मणिकार —तथा (इति निष्क्रान्तास्त्रयः)

शिवराज —कः कोऽत्र भोः।

अङ्गरक्षक —(प्रविश्य) आज्ञापयतु देव।

शिवराज —मन्त्रगृहमार्गमादेशय।

मणिकार—(आकर) यह सविस्तार तालिका है। (पत्र देता है)

शिवराज—(पत्र लेकर और पढ़ने के बाद) द्विभाष। वणिक्पति को सूचित कर दो कि हम इनमें से और भी शस्त्रास्त्र खरीद लेंगे।

द्विभाषी—जैसा आदेश। (उससे कहता है।)

शिवराज—मणिकार, इन दोनों को अतिथिभवन में ले जाओ। मेरी ओर से अध्यक्ष को निवेदन करो कि यह विदेशी सपरिवार राज्य-अतिथि के रूप में सम्मानित किया जाय।

मणिकार—जैसी आज्ञा। (तीनों चले जाते हैं)

शिवराज—कौन, कोई है?

अङ्गरक्षक—(प्रवेशकर) आज्ञा देव।

शिवराज—मन्त्रणागृह का मार्ग निर्देश करो।

मंगलरक्षक :—इत इतो देवः। (सर्वेपरिक्रामन्ति) एतन्मंत्रगृहद्वार प्रविशतु देवः सानुग.। (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति मंत्रगृहावस्थिता मंत्रिणः)

शिवराज :—(प्रविश्य) मंत्रिण दिष्ट्या सफलोऽस्माकं मनोरथः।

मंत्रिण :—(उत्थाय) वर्धतां देवोऽभीष्टसम्पदा।

(इति शिवराजमनु सर्वे उपविशन्ति)

शिवराज :—सचिव त्वं तावदविलम्बेन निर्माय नूतनं दुर्भेद्य-प्राकारादि परिवेष्टितं राजगडदुर्गमापादयास्य राजधानीयोग्यताम्। यावत्तत्र स्थिता वय राजकार्याणि पश्येम।

सचिव —यदाज्ञापयति देव.। (इति निष्क्रान्त)

शिवराज :—वीर त्वमपि फिरङ्गिण. क्रीतैरायुधैः संनाह्य माव-लेजनवाहिनीं कल्याणजयार्थमभिनियुक्तमाबाजीवीरं संप्रतिपद्यस्व। सद्य एव

मङ्गलरक्षक—इधर से देव, इधर से। (सभी चलते हैं) यह मंत्रणा-गृह का द्वार है, साथियों सहित प्रवेश करें देव। (चला जाता है)

(उसके पश्चात् मंत्रणागृह में मन्त्रिगण बैठे दिखायी पड़ते हैं)

शिवराज—(प्रवेश कर) मन्त्रियों भाग्य से हमारा मनोरथ पूर्ण हुआ।

मन्त्रिगण—(उठकर) देवका मनोरथ पूर्ण होता रहे। (शिवराज के बैठने के बाद सभी बैठते हैं।)

शिवराज—सचिव, तुम शीघ्र ही प्राकारादि से घिरे हुए दुर्भेद्य एक नवीन दुर्ग राजगढ़ का निर्माण कर उसे राजधानी के योग्य तैयार करो। हम उस दुर्ग से राजकार्य देखेंगे।

सचिव—जैसी आज्ञा देव। (कहकर चला जाता है)

शिवराज—वीर, तुम भी तुरन्त ही विदेशी वणिक् से खरीदे हुए शस्त्रास्त्रों से मावलों की सेना तैयार करके, कल्याण विजय के लिए प्रेषित आबाजी वीर से जाकर सम्मिलित हो जाओ। तुरन्त ही

सुतीक्ष्णभल्लासिधनु समूर्जिता, विशालतूणीपरिणद्धपार्श्वा ।
स्वातंत्र्यसम्भावनया समेधिता, प्रयान्तु मे वन्यपदातिसंघा ॥११

नेताजी —यद्देव आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्तः) ।

शिवराज :—अमात्य, त्वयि विनिहित राज्यभारोऽहमपि तावत्सेनानायकेन सह कोंकणजयार्थं प्रतिष्ठे । तदवेक्षस्वाद्यप्रभृति सर्वाणि राजकार्याणि ।

तानाजी :—यदाज्ञापयति देव । (इतिनिष्क्रान्ताः सर्वे)

समाप्तोऽयं निधिसम्प्राप्तिनामा

द्वितीयोऽङ्कः



तीक्ष्ण भालों, कृपाणों, धनुषों से प्रबल, कटि-प्रदेश में तूणीर (तरकश) कसे हुए, स्वातन्त्र्य भावना से भली भाँति प्रोत्साहित, वन्य-जनों (वनवासियों) की हमारी पैदल सेना प्रस्थान कर रही है । ११

नेताजी —जैसी देव की आज्ञा । (चला जाता है)

शिवराज—मन्त्रिन् राजकाज का भार तुम पर छोड़कर मैं भी सेनानायक के साथ कोंकण-विजय के लिए प्रस्थित हो रहा हूँ । इसलिए आज से सभी राजकार्य की व्यवस्था करो ।

तानाजी—जैसी आज्ञा देव । (सभी जाते हैं)

निधिप्राप्ति नामक

द्वितीय अंक समाप्त



तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति राजगडदुर्गप्रासादावस्थितो मन्त्रिद्वितीयः शिवराजः)

शिवराज—मन्त्रिन्, सुव्यवस्थितेऽपि राज्यतन्त्रे कथमद्यापि निर्वृतिं न व्रजति मेऽन्तरात्मा।

रात्रिंदिवं रिपुगणान् शतशो निहत्य
नीतो वशं प्रसभमेव मया प्रदेशः।
नाथ तथापि परिपन्थिवधाकुलो मे,
तृप्तिं प्रयाति नितरां तृषितः कृपाणः ॥१

मंत्री—देव न स्वल्पस्वल्पेनाल्पेन परितुष्यन्ति तेजस्विनः।

उद्भास्य शैलशिखरं च्युतपादपाद्य
तेजोनिधिः किमु ततो विरमेद्विवस्वान्?
अभ्युद्गतो गगनमध्यगतः क्रमेण,
धाम्ना निजेन निखिलं भुवनं चकास्ति ॥२

तीसरा अंक

(उसके बाद मन्त्री के साथ राजगडदुर्ग में शिवराज आते हैं)

शिवराज—मन्त्रिन्, राज्यतन्त्र भली भाँति व्यवस्थित होने पर भी मेरा हृदय अशान्त ही क्यों है?

यद्यपि रात दिन सैंकड़ों शत्रुओं का वध करके हमने अपनी शक्ति से इस प्रदेश को अधिकार मे कर लिया, तथापि शत्रुओं का वध करने के लिए उत्सुक मेरी तलवार अभी भी सन्तुष्ट नहीं हुई।१

मन्त्री—देव, तेजस्वियों को थोड़ी सफलता से सन्तोष नहीं होता—

क्या सूर्य उदय होकर पर्वत की चोटियों पर उगे (स्थित) हुए वृक्षों के ऊपरी भाग को प्रकाशित करके ही विश्राम लेता है, नहीं वह धीरे धीरे गगन के मध्य तक पहुँचकर अपनी किरणों के प्रकाश से समस्त जगत को प्रकाशित कर देता है।२

संप्रति अस्मदुपक्रमसंरब्धो बीजापुरेशो महता सैन्येन सहसाऽ-स्मानभियोक्ष्यत इत्याशङ्कते मे हृदयम् ।

शिवराजः—मयाप्येतदेव विमृश्यते ।

(नेपथ्ये)

वैतालिकः—विजयतां देवः ।

जनपदहितरक्तो नीतियोगप्रतिष्ठो,
विदलितरिपुसंघः स्वाभिलाषे वितृष्णः ।
शरणमुपगतानां दुर्गतानां शरण्य—
स्तपनकुलमणे त्वं राजसेऽमोघवीर्यः ॥२

शिवराजः—(आकर्ण्य) अहो, नयप्रयोगाश्रयणेन सुसाध्या भविष्यन्त्यरातय इति नास्त्यत्रौत्सुक्यकारणम् । तथापि सर्वात्मना बलोपचयः प्रार्थीयतां मया ।

अब हमारे इस प्रयास के प्रारम्भ हो जाने के कारण बीजापुर नरेश विशाल सेना-सहित हमारे ऊपर अचानक आक्रमण करेगा, ऐसी शंका होती है ।

शिवराज—मुझे भी शंका है ।

(नेपथ्य में)

वैतालिक—विजय हो, देव ।

हे सूर्यकुल के मणि ! देश हित के कार्यों में रत, नीति में निपुण और स्थिर शत्रु-समूह का नाश करके, अपने स्वार्थ का परित्याग करने वाले, दीनदुखियों के लिए शरण भूमि, तुम्हारा अनुपम बल-वीर्य से युक्त तेज चमक रहा है ।२

शिवराज—(सुनकर) ओह, नीति-प्रयोग के सहारे, सहज ही में शत्रुओं पर विजय प्राप्त हो जायगी, उतावली और चिन्ता की आवश्यकता नहीं । तथापि हमें सैन्य संगठन के लिए प्रयास करना चाहिए ।

मन्त्री—पूर्वमेव मयादिष्ट सेनानायकः पदातिदलसंग्रहाय।

द्वारपाल—(प्रविश्य) विजयतां देव। एष कोंकण प्रान्तात् सम्प्राप्तो गोवलकरसामन्तो द्वारि तिष्ठति।

शिवराज—प्रवेशयैनम्।

द्वारपाल—तथा। (इति निष्क्रान्तः)

सामन्त—(प्रविश्य) विजयतां महाराज। सर्वत्र विजयशालिनो महाराजस्य प्रणयपुरःसरमुपायनीक्रियत एष भवानी खड्ग।

देवानां नवविजयध्वजो रणाग्रे
दैत्यानां प्रलयकृदेव धूमकेतुः।
पापानां हृदयविदारणो महोग्रः
खड्गोऽयं तव परिकल्पितो भवान्या ॥४

तत्स्वीकृत्यैनमनुगृहाण सेवकजनम्।

शिवराज—(सानन्दं स्वीकृत्य निरीक्ष्य च) भगवति परदेवते,

मन्त्री—मैंने सेनापति को पैदल सेना संगठित करने का आदेश पहले ही दे दिया है।

द्वारपाल—(प्रवेश कर) विजय हो, देव। कोंकण प्रदेश से आये गोवलकर सामन्त द्वार पर स्थित हैं।

शिवराज—उन्हें उपस्थित करो।

द्वारपाल—जैसी आज्ञा (चला जाता है)

सामन्त—(प्रवेश कर) महाराज की जय हो। सर्वत्र विजय प्राप्त करने वाला, भवानी नामक यह कृपाण आपको मैं सादर भेंट करता हूँ—

युद्ध भूमि में देवों के लिए नवविजयध्वजा की भाँति लहरनेवाली, दैत्यों के लिए धूमकेतु-सदृश विनाशकारिणी कलुष हृदयों को विदीर्ण करनेवाली यह तलवार भवानी ने तुम्हारे लिए प्रदान की है।४ अतः इसे स्वीकार कर सेवक को अनुगृहीत करें।

शिवराज—(सानन्द स्वीकार कर और निरीक्षण करके) भगवति!

(ततः प्रविशति कल्याण प्रान्ताधिपस्नुषया सहित आबाजी)

आबाजी—वर्धतां देव कल्याण विजयेन। देवाधीनाः सन्ति तत्र बन्दीकृतस्य तत्प्रान्ताधिपस्य प्राणाः।

शिवराज—सद्यस्ते कारागृहाद्विमुच्य यथार्होपचारैश्च सभाज्य विसर्जय।

आबाजी—यद्देव आज्ञापयति। अपि च महाराजायोपायनी-कर्तुमानीतमेतदलोकसाधारणं स्त्रीरत्नम्। तत्स्वीकृत्यानुगृह्णातिमं दासजनम्।

शिवराज—(सरोषम्) अरे किमिदं त्वयाऽनार्यमनुष्ठितम्।

तपन कुलभवस्य धर्मवृत्ते—रपि परदाररतिर्विभाव्यते किम्।
विषममुपगतोऽपि राजहंस, किमु बकवृत्तिमुपाश्रयेत कश्चित् ॥६

(उसके पश्चात् कल्याण प्रान्त के अधिपति अपनी पुत्रवधू सहित प्रवेश करते हैं)

आबाजी—कल्याण विजय से आपकी वृद्धि हो। प्रान्ताधिपति जो बन्दीगृह में हैं, उनके प्राण आपके अधीन हैं।

शिवराज—तुरन्त कारागार से बाहर कर, यथोचित सम्मान के साथ छोड़ दो।

आबाजी—जैसी देव की आज्ञा। मैं महाराज को भेंट करने के लिए एक अलौकिक स्त्रीरत्न लाया हूँ। उसे स्वीकार कर इस दास को अनुगृहीत करें।

शिवराज—(क्रोध से) अरे, यह तुमने क्या करडाला।

क्या सूर्यकुल में उत्पन्न व्यक्ति, जो सदा धर्माचरण में प्रवृत्त रहता है, कभी परस्त्री में प्रवृत्त होगा? क्या राजहंस विषम परिस्थिति आने पर भी बगुले की वृत्ति का आश्रय कभी ले सकता है। ६

(मन्त्रिणं प्रति) तदुद्घुष्यतां तारस्वरेणास्मद्धर्मराज्ये शिवराजस्य तद्भृत्यानां च दुहितृनिर्विशेषाः परस्त्रियः।

मन्त्री—यथाज्ञापयति महाराज। (इति पत्रं निवेदयति)

आबाजी—प्रसीदतु देव। साम्प्रतं राजकुलसाधारणोऽयमुपचार इति कृत्वा मयाऽत्र प्रवृत्तम्। तदनुकम्पनीयोऽयं दासजनः।

शिवराज—तव विनयेन परितुष्टोऽहमद्य त्वां कल्याण प्रान्ताधिपत्ये नियुनज्मि। तन्न्यायेन प्रजाः पालयंस्तदस्माकं धर्मचक्रं प्रवर्तय।

आबाजी :—यथाज्ञापयति देव। (इति प्रान्ताधिपस्नुषया सह निष्क्रान्तः)

द्वारपालः—(प्रविश्य) विजयतां देव। सप्तशतं पाश्चात्य सैनिकाः महाराजस्य विजययशोभिः समाकृष्टा बीजापुरेशमपहाय महाराजाश्रयम् इच्छन्ति। अत्र देवः प्रमाणम्।

(मंत्री से) तीव्र ध्वनि में घोषणा करो कि हमारे धर्मराज्य में शिवराज तथा उसके सेवक दूसरों की स्त्रियों को अपनी कन्या के समान समझते हैं।

मंत्री—महाराज की जो आज्ञा।

आबाजी—देव, प्रसन्न हों। मैं राजकुलोचित साधारण परम्परा को पूर्ण करके यहां आया हूं। अब इस दास पर कृपा करें।

शिवराज—तुम्हारे विनय से सन्तुष्ट होकर हम तुमको कल्याण प्रान्त का अधिपति नियुक्त करते हैं। इसलिए न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करते हुए हमारे धर्मराज्य की स्थापना करो।

आबाजी—देव जैसी आज्ञा दें। (प्रान्ताधिपति की बहू के साथ जाता है।)

द्वारपाल—(प्रवेश कर) विजय हो, देव। महाराज, आपकी यशस्वी विजयों से आकर्षित होकर, सात सौ पाश्चात्य सैनिकों ने बीजापुर नरेश को त्याग दिया है और वे आपका आश्रय चाहते हैं। इसका निर्णय करेंगे।

शिवराजः—मन्त्रिन् कथमेते विश्वसनीयाः।

प्रत्यर्थिनि परिजनेऽतितरां विनीते,
स्त्रैणे मृषोक्तिपरमे विषयप्रसक्ते।
धर्मध्वजे द्विषति हीनकुलोद्भवे च,
विश्वस्य नाशमुपयाति पुरन्दरोऽपि ॥७

मन्त्री—महाराज न मन्त्र्यधिकारनियोगपरोऽयं परामर्शः। सैनिकानां तु नास्ति कश्चन स्वतन्त्रोऽधिकारः। तन्नोचितोऽत्र प्रतिषेधः। अथ चैते परधर्मिण इति कृत्वाऽपि न युक्तः प्रतिषेधः। यतः

विभिन्नधर्मा नृपतिर्निजाः प्रजाः, समत्वमास्थाय सदैव पालयेत्।
स्वधर्मनिन्द्यपरस्तु हेलया, प्रजाविरोधात् प्रबलोऽपि हीयते ॥८

शिवराज—सत्यं समदृष्ट्यैवेयं साम्राज्यप्रतिष्ठा। (द्वारपालं प्रति) सद्बुध्यतां मद्वचनात्सेनापतिर्यथावदेतेषां नियोगाय।

शिवराज—मन्त्रिन्, इन पर विश्वास कैसे किया जाय ?

शत्रु, परिजन, (भृत्य वर्ग) के प्रति अत्यन्त विनीत, स्त्रैण, असत्य भाषण, विषयों में आसक्त, पाखण्डी, शत्रु और निम्नकुलोद्भूत जन में विश्वास करने पर इन्द्र तक सर्वनाश को प्राप्त हो सकता है। ७

मन्त्री—मन्त्रियों के साथ बैठकर हम इस पर विचार करेंगे। सैनिकों का तो कोई स्वतन्त्र अधिकार नहीं है। तथापि उनकी प्रार्थना अस्वीकार करनी अनुचित है। उन्हें पर धर्मी समझकर भी प्रतिरोध करना ठीक नहीं है। क्योंकि—

राजा को चाहिए कि वह अपनी प्रजा का पालन विभिन्न धर्मों का ध्यान रखते हुए समानभाव से करे। स्वधर्म का तिरस्कार करने वाला प्रबल भी राजा प्रजा के विरोध के कारण नष्ट हो जाता है। ८

शिवराज—सत्य ही है, समानभाव की ही बुद्धि से साम्राज्य की प्रतिष्ठा होती है। (द्वारपाल से) सेनापति को मेरा आदेश सुनाओ कि इनको गुणानुसार मेरी सेवा में उपस्थित करें।

द्वारपाल —तथा । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराज —मन्त्रिन्, नास्ति पर्याप्तं केवलं पदातिबलं प्रबलारातिनिग्रहाय । तदस्माभिः शीघ्रं सादिबलमप्युपकल्पनीयम् ।

मन्त्री —देव, नेताजीवीराधिष्ठितं सादिबलमचिरेणैव भविष्यति रणायसारक्षमम् । तद्राजमाचीतो यदाऽसौ प्रत्यागच्छेत्तदाऽस्मिन्नेव कार्ये नियोजनीयः ।

शिवराज —सर्वथाऽभिनन्दते तवाध्यवसायं ।

द्वारपाल—(प्रविश्य) विजयतां देवः । एष राजमाचीतः प्रत्यागतो नेताजीवीरो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराज —प्रवेशयैनम् ।

द्वारपाल—तथा (इति निष्क्रान्तः)

नेताजी —(प्रविश्य) विजयतां देवः । त्वदीयपदपद्ममागत्य प्रवि-

द्वारपाल—जो आज्ञा । (चला जाता है ।)

शिवराज—मन्त्रिन्, प्रबल शत्रु के दमन के लिए केवल पैदल सेना पर्याप्त नहीं है । इसलिए शीघ्र हमें रथसैन्य भी संगठित करना चाहिए ।

मंत्री—देव, वीरवर नेताजी के नेतृत्व में शीघ्र ही सेना रणभूमि में उतरने के लिए समर्थ होगी । अतएव जैसे ही वह राजमाची से वापस हों उन्हें इसी कार्य के लिए नियुक्त कर दिया जाय ।

शिवराज—तुम्हारे निर्णय से सर्वथा सहमत हूँ ।

द्वारपाल—(प्रवेश कर) विजय हो देव । राजमाची से लौटकर आये नेताजी द्वार पर स्थित हैं ।

शिवराज—ले आओ उन्हें ।

द्वारपाल—जो आज्ञा । (चला जाता है)

नेताजी—(प्रवेश कर) देव की विजय हो । सर्वप्रथम मैं मेरे शुभ-

घ्दैन गूढचरेण निशीथेऽधः प्रसारिता रज्जुमवलम्ब्य प्राकारमधिरु‍ह्य अस्मत्सैनिकगणैर्निहता राजमाच्युपरोधकारिणो यवनसैनिकाः।

शिवराजः—वीर प्रशंसनीयं खलु तवैतत्साहसविक्रान्तम्। अपि परितोष्यते यथार्होपचारेण त्वया बन्दीकृतो यवनेशश्यालः।

नेताजीः—अथ किम्। को नु खलु महाराज शासनमतिक्रमितुं प्रभवति। देव तत्र निबद्धाः सन्त्यद्यापि युद्धगृहीता यवन सैनिकाः।

शिवराजः—मंत्रिन् आदिश राजमाच्यधिकृतं तान् विसर्जयितुम्।

मन्त्रीः—यदाज्ञापयति देवः। (इति पत्रे निवेशयति)

शिवराजः—वीर प्रत्यासन्न एवापरः सङ्ग्रामः। तत्सेनाऽपि सन्निनिधीयताम्।

नेताजीः—यदेव आज्ञापयति। (इति निष्क्रान्तः)

चर ने किला के वेश में पहुँचकर रस्सी लटका दिया जिसके सहारे हमारे सैनिकों ने राजमाची में प्रवेश कर दुर्ग के अवरोधक यवन सैनिकों को मार डाला।

शिवराज—वीर तुम्हारा यह साहस और शौर्य प्रशंसनीय है। क्या बीजापुर नरेश का श्याल, जो तुम्हारा बन्दी है व्यवहार से सन्तुष्ट है?

नेताजी—जी हाँ। किसमें साहस है, जो महाराज के शासन की अवहेलना करें। देव अभी भी तो युद्ध में बन्दी यवन सैनिक हैं।

शिवराज—मन्त्रिन्, राजमाची के रक्षक को उन्हें मुक्त करने का आदेश करो।

मंत्री—जैसी देव की आज्ञा। (कागज पर लिखता है।)

शिवराज—वीर दूसरा सङ्ग्राम भी सन्निकट है। इसलिए सैन्य तैयार कर लो।

नेताजी—जैसी देव की आज्ञा। (चला जाता है)

चरः—(प्रविश्य) देवस्य स्वातंत्र्यनिष्ठया संरब्धेन दुरात्मना बीजापुराधीशेन कारागारे निरुद्धास्तातपादाः । (इति निष्क्रांत)

शिवराजः—(सरोषम्) अरे दुर्मदान्ध, अपि सन्निष्ठया विहिताया स्ते सपर्याया ईदृशः परिणामः । अथवा कृतोपकारेभ्य एव द्रुह्यन्ति दुरात्मनः ।

विहाय कान्ता सुतबन्धुवर्गान्, कुलप्रतिष्ठामथ जीवितस्पृहाम् ।
हन्त्येकभक्त्याऽपि निषेवितोऽधमः, पर्याप्तकामः स्वयमेव सेवकम् ॥९

मंत्रीः—सर्वंशात्मनाश एवाधम शुश्रूषायाः पारितोषिकम् ।

शिवराजः—मंत्रिन्, कथमपि रक्षणीया पितृचरणाः । यतः

राज्ञः प्रजायाः परिपालनं यथा, भृत्यस्य भर्तुर्हित साधनम् च ।
कुलस्त्रियः पत्युरथानुवर्तनं, तथा सुतस्यास्ति गुरोरुपासनम् ॥१०

चर—(प्रवेश कर) देव के हृदय में स्वातंत्र्य निष्ठा हो जाने के कारण दुरात्मा बीजापुर नरेश ने आपके पिताजी को कारागार में छोड़ दिया है । (चला जाता है)

शिवराज—(क्रोध से) अरे दुर्मदान्ध, क्या तुम सच्ची निष्ठा का यही परिणाम है ? अथवा उपकार करने वाले से ही दुरात्मा पुरुष द्रोह करते हैं ।

स्त्री, पुत्र, बन्धु-बान्धवों, कुल-मर्यादा और प्राणों तक का मोह त्याग कर सेवा करने वाले सेवक को भी (अधम व्यक्ति) अपना कार्य पूर्ण हो जाने पर मार डालते हैं ॥९

मंत्री—अधम व्यक्ति की सेवा का पुरस्कार सर्वात्मनाश है ।

शिवराज—मन्त्रिन्, पितृचरण की किसी भी प्रकार रक्षा होनी चाहिए । क्योंकि—

जैसे राजा द्वारा प्रजा का पालन करना परम कर्तव्य है, सेवक का कर्तव्य स्वामी का हित साधन करना, कुलीन स्त्री का कर्तव्य पति की आज्ञा मानना है तथैव पुत्र का कर्तव्य है गुरु (पिता) की उपासना करना ॥१०

मंत्री—देव भग समामनन्ति नयशास्त्रकोविदो यत्

सन्धानं सत्यसन्धे नयगुणविहित विग्रहो हीन सत्वे,
यानं चान्तर्विपन्ने गिरिगहनगते चासने दुर्गसंस्थे।
द्वैधं व्यूहाप्रधर्ष्ये कुटिलनयरते शक्तियोगावलिप्ते,
प्रत्यर्थिन्याशु कार्यः प्रबलनृपतेः संश्रयः श्रेयसे नः ॥११

तदेतद्विपत्संतरणार्थं दिल्लीपतिरेव समाश्रयणीयः। यतः

सदाश्रयोऽयं विदुषां कलावतां निजे परे चापि समानभावः।
निरस्तपाप. स्वधर्मप्रमत्त, प्रजा प्रजाः स्वा इव शास्त्यधीश ॥१२

शिवराज —ममाप्येतदेवाभिप्रेतम्। यतः

मन्त्री—इस विषय मे नीतिज्ञों का मत है कि—स्वहित की दृष्टि से सत्य-पथगामी नीतिमान् शत्रु से सन्धि, शक्तिहीन से युद्ध-घोषणा, जिसकी शक्ति अन्दर ही अन्दर क्षीण हो उस पर आक्रमण, पर्वत, जङ्गल अथवा दुर्ग मे स्थित शत्रु से युद्ध-विराम, और उस शत्रु के साथ दुहरी चाल चलनी चाहिए, जो सैन्य-व्यूह के कारण अजेय हो रहा हो एवं कुटिल नीति और तीनों शक्तियों से युक्त अभिमानी, तथा अजेय शत्रु के लिये प्रबल राजा का आश्रय ग्रहण करना चाहिए ॥११

अतः इस विपत्ति से मुक्ति पाने के लिए हमें दिल्ली सम्राट् का आश्रय लेना चाहिए। क्योंकि—

यह विद्वानों, कलाकारों का आश्रयदाता अपने मित्र और शत्रु दोनों के प्रति समानभाव रखने वाला, पाप कर्म से रहित अपने कर्तव्य में रत और प्रजा का औरस सन्तान की भांति पालन करनेवाला है ॥१२

शिवराज—मेरा भी यही विचार है। क्योंकि—

दिल्लीशोपाश्रयेणैव वशे नेयोऽयमुद्धतः ।
दुर्दान्तस्याधमस्यास्य नास्त्यन्या दमनक्रिया ॥१३

तत्प्रयुज्यतां कोऽपि कार्यक्षमो निसृष्टार्थो दूतोऽस्मदभीष्टं संपादयितुम् ।

मंत्री :—गच्छतु रघुनाथपन्त एतत्कार्य संसिद्धये ।

शिवराज :—स्थान एवास्य नयविचक्षणस्य पण्डितवरस्य नियोगः । कः कोऽत्र भोः ।

द्वारपाल :—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

शिवराज :—पण्डितवरं द्रष्टुमिच्छामि ।

द्वारपाल :—यदाज्ञापयति देव । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराज :—विलिख्यतां तावद्विज्ञापनपत्रम् ।

मंत्री :—तथा । (इति पत्रं लिखति)

इस उद्धत शत्रु को दिल्लीश्वर की सहायता से ही वश में करना चाहिए, दुर्दान्त और अधम के लिए अन्य कोई उपाय नहीं है ।।१३ अत. हमारे अभीष्ट के संपादनार्थ किसी कुशल दूत को नियुक्त करो ।

मंत्री—इस कार्य की सिद्धि के लिए रघुनाथपन्त जायें ।

शिवराज—नीतिनिपुण पण्डितवर ही इसके लिए उपयुक्त हैं । अरे ! कौन है ?

द्वारपाल—(प्रवेशकर) आज्ञा देव ।

शिवराज—पण्डितवर के दर्शन की इच्छा है ।

द्वारपाल—जो आज्ञा । (चला जाता है)

शिवराज—तब तक विज्ञापनपत्र लिखें ।

मंत्री—(पत्र लिखता है)

शिवराज :—(लेख्यमभिलिखति)

श्रीमद्भारतराजकुलाधीश्वर - साम्राज्यश्रीनिकेतन सार्वभौम-मोगलेशचरणे रचिताञ्जलि शिवराज सप्रश्रय प्रार्थयते यत्सार्वभौमस्य भृत्यपदं प्रविविक्षुरयं जनो यथा नियोगेनानुग्राह्य इति । अपि च कृतघ्नेन बीजापुरेशेन विनाऽपराधं कारागृहे निरुद्धानां निजतातपादानां मुक्तिसंपादेनानुग्रहान्तरमभिलषत्येव सार्वभौमभृत्यः । वितरतु कृपापारावारे श्री सार्वभौमेऽभ्नतयश समृद्धिवैभव विश्वनियन्तेत्याशास्ते च इति ।

मन्त्री—देव लिखितं मया यथादिष्टम् ।

पण्डितवर :—(प्रविश्य) विजयतां देवः ।

शिवराजः—आदायैतद्विज्ञापनपत्रं प्रतिष्ठस्व तावद्दिल्ली नगरम् । तत्र च सार्वभौममनुकूलं विधाय सर्वात्मना सम्पादयास्मत्तातपादानां विमुक्तिम् । (इति स्वनाममुद्राङ्कितं विधाय पत्रमर्पयति)

शिवराज—(पत्र लिखाते हैं) श्रीमद्भारतराज-कुलाधीश्वर, साम्राज्य श्रीनिकेतन सार्वभौम मुगल-सम्राट् के चरणों में बद्धाञ्जलि यह शिवराज सादर निवेदन करता है कि सार्वभौम सम्राट् के यहाँ अपनी योग्यतानुसार सेवक के रूप में प्रवेश चाहता है । और कृतघ्न बीजापुराधीश द्वारा निरपराध कारागार में बन्द अपने तातचरण की मुक्ति-सम्पादन-कार्य के लिए भी अनुग्रह की यह सार्वभौमभृत्य इच्छा करता है । अनन्तयशवाले सार्वभौम सम्राट्, जो विश्व के नियन्ता हैं, हमारे ऊपर कृपासागर के कुछ कण बिखेर दें ।

मंत्री—देव, आपके आदेशानुसार मैंने लिख दिया ।

पण्डितवर—(प्रवेशकर) विजय हो देव ।

शिवराज—यह विज्ञापनपत्र लेकर दिल्ली नगर जायें । और वहाँ सर्वतोभावेन अपने प्रयास से सार्वभौम सम्राट् को अपने अनुकूल करके तातचरण को मुक्त कराने का कार्य सम्पन्न करो । (अपने नाम की मुद्रा से अंकित पत्र देता है)

पण्डितवर :—(पत्रमादाय) यद्देव आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराज :—क कोऽत्र भोः ।

द्वारपाल :—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

शिवराज :—अन्तर्गृहमार्गमादेशय ।

द्वारपाल :—इत इतो देवः । (उभौ परिक्रामतः) एतदन्तर्गृहद्वारं प्रविशतु देव । (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति अन्तर्गृहावस्थिता राजमाता राज्ञी च)

शिवराज :—(प्रविश्य) अम्ब अभिवादये ।

राजमाता—वत्स चिरं जीव । अप्यस्ति कश्चिद्विशेषः ।

शिवराज :—कृतघ्नेन बीजापुरेशेन बन्दीकृतानां तातपादानां विमुक्त्यै कर्तव्यतयाऽऽश्रितो मोगलेशसम्राट् ।

राजमाता—सुलक्षितोऽयं मन्त्रनिर्णयः । अविलम्बमनेन तवाभीष्टसिद्धिः । यतः

पण्डितवर—(पत्र लेकर) जैसा देव आदेश करें । (चला जाता है)

शिवराज—अरे ! कौन है ?

द्वारपाल—(प्रवेशकर) आज्ञा देव ।

शिवराज—अन्तर्गृह का मार्ग दिखाओ ।

द्वारपाल—इधर, देव इधर से । (दोनों चलने का नाट्य करते हैं) यह अन्तर्गृह का द्वार है, प्रवेश करें देव । (चला जाता है)

(उसके बाद अन्तर्गृह में स्थित राजमाता और रानी का प्रवेश)

शिवराज—(प्रवेशकर) माता-अभिवादन करता हूँ ।

राजमाता—चिरञ्जीव पुत्र । कोई विशेष समाचार ?

शिवराज—कृतघ्न बीजापुरनरेश द्वारा बन्दी किये गये तातचरण की मुक्ति के लिए मुगल सम्राट् का सहारा ले रहा हूँ ।

राजमाता—यह उचित निर्णय हुआ । इस प्रकार तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा । क्योंकि—

न सर्वदा विक्रमशालिनोऽप्यलं, भवन्त्यरातीन् सहसा प्रधर्षितुम् ।
ऊर्जस्विनो साहसमस्ति विप्लुते, नयप्रयोगेऽगतिका गतिध्रुवम् ॥१४

तत्प्रेषय पण्डितवरमेनमर्थं संपादयितुम् ।

शिवराज :—अम्ब, तथैव मया प्रकल्पितम् । एवं त्वयाऽनुमोदितस्य नितरां मोदते मेऽन्तरात्मा ।

राजमाता—वत्स, श्रुतं मया चरेभ्यो यत्प्राणान्तविपदः प्राणमानं रक्षितुं धर्मान्तरमाश्रितो बजाजीवीरः पुनः स्वधर्मं प्रवेष्टुमिच्छति । अत्रास्य प्रतिकूलोऽस्मद्बन्धुवर्गः । परन्तु साम्राज्य संस्थापन प्रवृत्तेन त्वया कर्तव्यो वीर संग्रहः । अतो यथाविधि परिशोधितस्यास्यात्मजाय स्वकन्यां प्रदाय संपादयास्य चिरसौहृदम् ।

शिवराज :—शिरसि ध्रियते तवादेशः ।

विक्रमशीलता ही सदा शत्रुओं को आक्रान्त करने के लिए पर्याप्त नहीं है, शक्तिशाली शत्रु पर विजय पाने में जब नीति प्रयोग भी असफल हो जाय तो साहस ही अन्तिम साधन होता है ।१४

तो पण्डितवर को यह संपादित करने के लिए भेजो ।

शिवराज—अम्ब, यही व्यवस्था मैंने की है । इस प्रकार तुम्हारे अनुमोदन से मेरी अन्तरात्मा बहुत प्रसन्न है ।

राजमाता—वत्स, सुना है कि प्राणान्तक विपत्ति से रक्षार्थ धर्म-परिवर्तन करने वाला बजाजीराव पुनः स्वधर्म में प्रवेश करना चाहता है । हमारे बन्धुवर्ग इसके प्रतिकूल हैं । किंतु साम्राज्य संस्थापन में प्रयत्नशील तुमको वीरों को अपने पक्ष में लाना चाहिए, इसलिए शुद्धि-क्रिया के पश्चात् तुम उसके पुत्र को अपनी कन्या प्रदान करके घनिष्टता प्राप्त करो ।

शिवराज—आपका आदेश स्वीकार है ।

राजमाता—वत्स पुण्यस्य भूयोभूयोमङ्गलेन । अथ महेश्वराराधनाय साधयामि देवगृहम् । (इति निष्क्रान्ता)

राज्ञी—आर्यपुत्र, अद्य खलु ।

लोक प्रकाशनकराततिमोऽपहारि, सतर्पणं नयनमानसयोर्वपुस्ते ।
एतत्प्रबोधचितयौवनराज्यलक्ष्म्या, तेजोद्वयस्य युगपत्सुषमां दधाति ॥१५

शिवराज —देवि त्वमेवासि मम सकलमङ्गलानामेकायतनम् ।
यत्त्व

प्रोत्साहनेन समराङ्गणतत्परस्य, प्रत्यागतस्य च पराक्रमणानुयोगं ।
उद्वेजितस्य नयमार्गविकल्पनैश्च, श्रान्तस्य नर्मवचसा तनुषे सुखं मे ॥१६

राज्ञी —आर्यपुत्र, धर्म एवैष सहधर्मचारिणीनां क्षत्राङ्गनानाम् । निसर्गत एव

राजमाता—वत्स, साफल्य और मगल के पात्र बनो। अब महेश्वर की अर्चना के लिए देवमन्दिर मे जा रही हूं। (चली जाती है)

राज्ञी—आर्यपुत्र, आज—आपका यह शरीर जो ससार मे प्रकाशित करनेवाला, शत्रु रूपी अन्धकार को दूर करने वाला नवयौवन तथा राज्यलक्ष्मी से युक्त यह शरीर दोनो तेजो—सूर्य और चन्द्रमा की शोभा एक साथ धारण कर रहा है।१५

शिवराज—देवि, तुम्हीं हमारे समस्त मगल के लिए केन्द्र स्थान हो। क्योंकि—तुम मुझे सदा सुख प्रदान करती रहती हो—समर के लिए प्रस्थानकाल मे प्रोत्साहित करके, वापस आने पर पराक्रम सबधी विविध प्रश्न पूछकर, उद्विग्न रहने पर विभिन्न नीति विषयक वार्त्ता द्वारा एव जब श्रान्त रहता हूँ तो मधुर वचन बोलकर सुख पहुँचाती हो।१६

राज्ञी—आर्यपुत्र, सहधर्मिणी क्षत्रिय ललना का धर्म ही यही है। स्वभावतः

तव व्रते मे हृदयं प्रतिष्ठितं, मनश्च मे त्वन्मनसैकतां गतम् ।
त्वयि प्रसन्ने भवति प्रसन्नं; समाकुलं, चाकुलिते त्वयि प्रिय ॥१७

शिवराज :—(स्वगतम्) अहो नु खलु धन्योऽस्मि । (प्रकाशम्) तव सुधास्यन्दिवचोभिराप्यायितोऽहं पुनः पुनर्नवतामुपेत्यारातीनभिभवितुमुत्सहे ।

राज्ञी—संप्रत्यधर्मप्रायेषु राजकुलेषु धर्मवृत्तेस्तव सुखोपगमैव विजयश्रीः ।

शिवराज :—(शतघ्नीस्वनमाकर्ण्य) अहो जातः खलु सेनानिरीक्षण समयः । यावत्तावद्यामि ।

राज्ञी—अहमपि तावच्छिवाराधनाय देवगृहमुपैमि ।

(पटाक्षेपः) (इति निष्क्रान्तौ)

समाप्तोऽयं राज्यव्यवस्थितिनामा

तृतीयोऽङ्कः

●

मेरा हृदय तुम्हारे संकल्प, मस्तिष्क तुम्हारे मन के साथ एकाकार रहता है । हे प्रिय, तुम्हारे प्रसन्न रहने पर प्रसन्नता तथा व्याकुल रहने पर मुझे आकुलता होती है ।१७

शिवराज—(स्वगत) वस्तुतः भाग्यशाली हूँ मैं । (प्रकट) तुम्हारे सुधा के समान मधुर वचनों से आनन्दित मैं शत्रुओं को आक्रान्त करने की नवस्फूर्ति प्राप्त कर उत्साहित होता हूँ ।

राज्ञी—राजकुलों के प्रायः अधर्मरत होते हुए धर्मवृत्ति वाले तुम्हारे लिए विजयश्री सहज प्राप्य होगी ।

शिवराज—(शतघ्नी की ध्वनि सुनकर) सेना-निरीक्षण का समय हो गया । अब मैं चलूँ ।

राज्ञी—मैं भी शिवाराधन के लिए देवमन्दिर में जा रही हूँ ।

(परदा गिरता है) (दोनों चले जाते हैं)

राज्यव्यवस्थिति नामक

तृतीय अंक समाप्त

●

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशतो राजपुरुषौ)

प्रथम — भद्र किमेवं प्रक्रान्तेऽपि महोत्सवे नियोगशून्य इवात्र परिभ्रमसि ।

द्वितीय — अये किं निमित्तोऽयं महोत्सवः ।

प्रथम — अहो किं न जानास्येतत् खलु भवान्याः प्रतिष्ठायाः परिसमाप्तिदिनमिति ।

द्वितीय — भद्र राजकार्यार्थं देशान्तरं प्रस्थितोऽहमद्यैवात्र समाप्तः ।

प्रथम — दिष्ट्यैतत्प्रतिष्ठामहोत्सवार्थं समुपस्थितस्य श्रीराम-दासस्वामिनः सान्निध्येन पवित्रीकृत एव प्रतापगडदुर्गः । भविताऽद्य देवस्यानेन महात्मना समागमः । अपि नामास्मिन्नस्तपोनिधौ भक्तिप्रवणो

चौथा अंक

(दो राजपुरुषों का प्रवेश)

प्रथम—भद्र, महोत्सव के प्रारम्भ हो जाने पर भी यह तुम घूम क्यों रहे हो, जैसे कोई काम न हो।

द्वितीय—ओह, यह महोत्सव कैसा ?

प्रथम—ओह, क्या नहीं जानते कि भवानी की प्रतिष्ठा का आज समाप्ति दिन है।

द्वितीय—भद्र, राज्यकार्य से देशान्तर गया था, आज ही यहाँ आया।

प्रथम—भाग्यवशात् प्रतिष्ठा–महोत्सव के निमित्त आये हुए स्वामी रामदास के सान्निध्य से यह दुर्ग प्रतापगड पवित्र हुआ। आज महाराज से इनकी भेंट होगी। मेरी इच्छा है कि देव के हृदय में इनके

भवेदस्मद्देवः । यतः स एवास्ति समर्थो देवस्य विघ्नशतान्यपि विदारयितुम् ।

द्वितीय —अप्यस्ति कश्चित्प्रतिकूल प्रसङ्गावकाशो येनैवं ब्रवीषि ।

प्रथम —अथ किम् । कारागृहाद्विनिर्मुक्तस्य शाहजीमहाराजस्य पुनः कर्णाटाधिकारपदप्राप्त्यनन्तरं बीजापुरेशस्य पुरतो देवं बन्दीकर्तुं प्रतिजज्ञेऽसूयाविष्टो धूर्तः शामराज । एतत्प्रतिज्ञासिद्धये च जावली प्रान्ताधिपसाहाय्यमपेक्षमाणः स तमेवाश्रित्यावर्तत । अत्र च निवसता शामराजहतकेन सह्याद्रिवन पर्यटतो देवस्य वधार्थं नियुक्तान् मारात्मकान् किरातान्निहत्य रक्षितो देवस्तत्राकस्मादुपस्थितेन नेताजीवीरेण ।

द्वितीय —एवं मिथो विद्वेषकलुषितेष्वस्मत्क्षत्रवीरेषु कुतः स्वातन्त्र्याधिगमो भारतीयानाम् ।

प्रति भक्ति भावना प्रगाढ़ हो । क्योंकि वही देव के सैकड़ो विघ्नों को दूर करने में समर्थ है ।

द्वितीय—क्या कोई प्रतिकूल घटना सम्भावित है जो ऐसा कहते हो ।

प्रथम—हाँ । शाहजी महाराज के कारागार से मुक्त होकर पुनः कर्नाटक के अधिकार पद पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात् ईर्ष्यावश धूर्त शामराज ने बीजापुराधीश के समक्ष देव को बन्दी बनाने की प्रतिज्ञा की । इस प्रतिज्ञा की सिद्धि के लिए साहाय्य की अपेक्षा रखकर उसने जावली के शासक का आश्रय ग्रहण किया । उसके वहाँ निवास करते हुए शामराज द्वारा, देव के वध हेतु प्रेषित जंगल में घूमते हुए उन वधिक किरातों के अचानक उपस्थित होकर नेताजी द्वारा मारे जाने पर देव की रक्षा हुई ।

द्वितीय—इस प्रकार हम, क्षत्रियों के परस्पर की विद्वेष भावना से कलुषित हृदय भारतीयों के लिए स्वतन्त्रता की प्राप्ति कहाँ ।

प्रथमः—ततश्च सुखं प्रत्यागतेन देवेन संदिष्टं तस्य क्षत्राधमस्य आवलीप्रान्ताधिपस्य यद्

त्यक्त्वैव देशकुल धर्मयशो ऽभिमाने,
म्लेच्छाधिपाय न मनागपि लज्जसे त्वम्।
प्राक्रम्य सुम्यकगणैरपि पाशबद्धः,
किंवा श्ववृत्तिमभिनन्दति सिंहशावः ॥१

इति। परन्तु प्रत्यासन्नमरणेन तेन सर्वथा प्रत्याक्षिप्तं देवस्य मन्त्रितम्। ततश्च समिद्धमन्युना देवेनासौ क्षत्रकुलापसदः क्षिप्रमेव यमालयं प्रेषितः।

द्वितीय—धन्यं हि नटपाटवं देवस्य। सद्य एव वध्यो विपोल्वणः कृष्णसर्पः।

प्रथम—मम रोगाक्रान्तं मोगलसाम्राज्यमपधुरस्य दिल्लीं नगरं प्रयाते तद्युवराजे आवली प्रान्ताधिपवध संजातमर्षेण बीजापुरेशेन देवं

प्रथम—'उसके पश्चात् सानन्द वापस आकर देव ने क्षत्रिय अधम जावली प्रान्ताधिप को आदेश दिया।

यवनराज के हाथों अपना अभिमान, धर्म, यश और कुल-मर्यादा को बेचकर क्या तुम्हें तनिक भी लज्जा नहीं आती, वधिकों द्वारा पाशबद्ध होने पर भी क्या सिंह-शावक कभी कुत्ते की वृत्ति स्वीकार करता है।१

मृत्यु के निकट जानकर भी देव की मन्त्रणा को नहीं माना और उसके पश्चात् उससे क्रुद्ध होकर देव ने उस क्षत्रियद्रोही दुष्ट को तुरन्त यमपुर को भेज दिया।

द्वितीय—देव की यह राजनीतिक कुशलता प्रशंसनीय है। शीघ्र ही यह विषैला कृष्णसर्प भी मारा जाना चाहिये।

प्रथम—मुगल सम्राट को रोगग्रस्त जानकर उसके युवराज के दिल्ली नगर प्रस्थित होने के बाद, जावली प्रान्त के अधिकारी के वध

निग्रहीतुमाज्ञप्तः स्वसेनानायकः । तदचिरेण भविष्यति पुनरपि युद्धारम्भः ।

द्वितीय:—अप्यस्ति विदितमेतद्देवस्य ।

प्रथम:—चारचक्षुषो देवस्य नास्ति किमप्यगोचरम् । (पुरतो विलोक्य) एष परिसमाप्य प्रतिष्ठाकार्यं प्रस्थितो देवो राजमन्दिरम् ।

द्वितीय:—भद्र, अहं तावद्देशान्तरोदन्तमावेदयितुमुपैमि मन्त्रिसदनम् ।

प्रथम:—अहमपि स्वनियोगपरिपालनाय प्राप्नोमि राजमन्दिरम् । (इति निष्क्रान्तौ)

(पटाक्षेप:)

इति विष्कम्भकः

से क्रुद्ध बीजापुराधीश ने अपने सेनापति को देव को बन्दी बनाने का आदेश दिया है । इससे शीघ्र ही युद्ध प्रारम्भ हो जायगा ।

द्वितीय—क्या यह देव को मालूम है ।

प्रथम—गुप्तचरों द्वारा समस्त सूचनाएँ प्राप्त करनेवाले देव के लिये कुछ भी अज्ञात नहीं है । (सामने देखकर) प्रतिष्ठा कार्य को समाप्त करके यह देव राजमहल को जा रहे हैं ।

द्वितीय—भद्र, मैं देशान्तर के समाचार निवेदन करने के लिये मंत्री के पास जा रहा हूँ ।

प्रथम—मैं भी अपना कार्यभार निबाहने राजमहल को चल रहा हूँ । (चले जाते हैं)

(परदा गिरता है)

विष्कम्भक समाप्त

(ततः प्रविशति रामदासेन सह शिवराजः)

शिवराजः—(सप्रश्रयम्) दिष्ट्याद्य कृतार्थतां गमितोऽस्मि चिरप्रार्थितेन भगवत्प्रसादाधिगमेन ।

(इति पुष्पस्रजं कण्ठे समर्प्य पादयोः पतति)

श्रीरामदासः—भारतैकवीर उत्तिष्ठ । धर्मराज्यसंस्थापनार्थं शङ्करांशेनावतीर्णस्य तव भवतु सर्वत्राप्रतिहतो विजयः ।

शिवराजः—(उत्थाय) प्रतिगृहीताज्ञो । (सनिर्वेदं) भगवन्, अथ मया यावज्जीवं किमेवमेव हिंसाप्रधानो धर्मोऽनुष्ठेयः ।

श्रीरामदासः—व्यवस्थितवर्णाश्रमेऽस्मिन् भारतेवर्षे दुष्कृतां हिंसनं साधूनां च परित्राणमेव क्षत्रियस्य परो धर्मः । तन्नय-मार्गमवलम्ब्योत्पथगामिनो नृपाधमांश्चोन्मूल्य प्रवर्तय तव धर्मशासनम् । न चैव प्रवर्तमानस्य तव धेयं प्रतिबन्धः । यतः

(इसके बाद रामदास के साथ शिवराज का प्रवेश)

शिवराज—(विनम्रता से) चिरकाल से भगवन् के दर्शन के लिए उत्सुक मैं आज भाग्यवशात् कृतार्थ हुआ । (पुष्पमाल कण्ठ में समर्पित कर पैरों पर गिरता है) ।

श्रीरामदास—भारत के अद्वितीयवीर उठो । धर्मराज्य की स्थापना-हेतु शंकर के अंश-सहित अवतरित तुम्हारी सर्वत्र विजय हो ।

शिवराज—(उठकर) अनुगृहीत हुआ । (सखेद) भगवन्, क्या जीवन पर्यन्त मैं इसी प्रकार हिंसात्मक कार्य करता रहूँगा ।

श्रीरामदास—वर्णाश्रम की व्यवस्थित परम्परा वाले इस भारतवर्ष में क्षत्रियों का परम धर्म है कि दुष्टों का वध और साधुजनों की रक्षा करें । इसलिए नीतिमार्ग का आश्रय ग्रहण करके पथभ्रष्ट अधम राजाओं का नाश करके अपना धर्मशासन स्थापित करो । इस आचरण में तुम्हें कोई धार्मिक बाधा नहीं है । क्योंकि—

लोकसंग्रहपरैर्जितात्मभिः ; कर्मयोगनिरतैर्नृपोत्तमैः ।
पाप्मनां प्रशमने प्रकल्पितो, धर्मतन्त्रमपि बाधते नयः ॥२

परन्तु

धर्मप्रसूता परिपन्थिनस्त्वया, सान्नैव राजन् त्वयका विधेया ।
॥ धर्मगुप्ते हि नयप्रयोगा , कदाचिदप्यर्थपरा भवन्ति ॥३

एवं धर्मनयप्रतिष्ठितेन च त्वया नानाधर्मा प्रजा समबुद्ध्यैव पालनीया । यतः

वृत्तं यथा धर्मभयेन रक्ष्यते, नृभिस्तथा नैव नरेन्द्रशासनात् ।
धर्मान् सदाचारपरायणो नृप, प्रजाहितज्ञो नियमेन पालयेत् ॥४

एवं प्रवर्तमानस्य तव सर्वथानुकूला भविष्यति जगन्नियन्त्री परदेवता ।

उत्तम राजा जो अपनी प्रजा के कल्याणार्थ यत्नशील रहते हैं, जितेन्द्रिय और कर्मनिष्ठ हैं, दुष्कर्मों का विनाश करने लिए नीति का प्रयोग करते हैं, ऐसे राजा धर्मतन्त्र को भी आक्रान्त कर डालते हैं । २

परन्तु हे राजन्, तुम्हें अपने शत्रुओं पर विजय करनी चाहिए, वे शत्रु जो धर्मनीति तथा साम शक्ति से युक्त हैं, क्योंकि कभी धर्मगुण के समक्ष राजनीति का प्रयोग व्यर्थ हो जाता है । ३

इस प्रकार धर्मनीति की प्रतिष्ठा द्वारा नाना धर्मों का अनुसरण करते हुए समान बुद्धि से तुम्हें प्रजा का पालन करना चाहिए ।

धर्म के भय से जैसे आचरण की रक्षा होती है उस प्रकार शासन से मनुष्यों को भय नहीं होता, मनुष्य धर्म और ईश्वर को डरता है अतः राजा को चाहिए कि वह धर्म एवं सदाचार का ध्यान रखते हुए, प्रजा का हित हृदय में सोचकर नियमतः शासन करे । ४

इस प्रकार आचरण करने पर जगन्नियन्त्री परादात्ति आपके अनुकूल रहेगी ।

शिवराजः—भगवन् तवानुग्रहेणाद्य निवृत्तं मे मोहावरणम् । नवीकृतश्च साम्राज्यसंस्थापनोत्साहः ।

श्रीरामदासः—वत्स, तव साहाय्यार्थं प्रतिमठं मया विनीयन्ते राष्ट्रभावभाविताः शतशो युवगणाः तदिमे

व्यायामयोगोपचिताङ्गाः सत्वा विद्याकलादण्डनयप्रतिष्ठिताः ।
राष्ट्रैकभक्ता उपधाविशोधिता भवन्तु ते भाविरणे सहायाः ॥५

शिवराजः—अहो परमार्थतो भगवतैवारब्धं राष्ट्रोद्धरणमिदमहं तु निमित्तमात्रमेव । सत्यमेतत् ब्रह्मसमेधितमेव क्षत्रमृध्नोति ।

श्रीरामदासः—वत्स, यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च समीची चरतस्तत्रैव साम्राज्यश्रीर्विलसति । अतः

ये क्षमा स्वतपसा दुरात्मनां निग्रहेऽपि च सतामनुग्रहे ।
ब्रह्मवर्चसिन आत्मवाजिनस्तान्सभाजय सदा स्वगुप्तये ॥६

शिवराज—भगवन्, आपके अनुग्रह से आज मेरा मोहान्धकार समाप्त हुआ और साम्राज्य स्थापना का उत्साह नया हो गया ।

श्रीरामदास—वत्स, तुम्हारी सहायता के लिए मैं प्रत्येक मठ में राष्ट्रीयभावना का समावेश कर रहा हूँ । अतः ये—

व्यायाम द्वारा अपने शरीर में शक्ति एकत्रकर, विद्या कला, दण्डनीति आदि में दक्ष हो, राष्ट्रभक्ति से युक्त, धर्म, अर्थ में भलीभाँति परीक्षित होकर, भावी समर में सहायक होंगे । ५

शिवराज—अहो, परमार्थ की भावना से वस्तुतः राष्ट्रोद्धार का कार्य आपने ही प्रारम्भ किया, मैं इसमें निमित्त मात्र हूँ। यह सत्य ही है कि ब्राह्मणों की शक्ति से युक्त होकर क्षत्रियों की शक्ति बढ़ती है ।

श्रीरामदास—वत्स, जहाँ ब्राह्मण और क्षत्रियों की बुद्धि एवं शक्ति का सहयोग होता है, वहीं साम्राज्य-लक्ष्मी विलसती है । इसलिए वही समादरणीय हैं जो क्षमाशीलता और तपस्या के बल दुरात्मा मनुष्यों का निग्रह और सज्जनों पर अनुग्रह करते हैं तथा जो ब्रह्मतेज से प्रकाशमान्, सभी को अपनी रक्षा हेतु, अपने ही समान मानते हैं । ६

अपि च साम्राज्यसमृद्धये त्वया प्रयत्नेनानुरञ्जनीया निषादपञ्चमाश्चत्वारो वर्णा । यत

यथाऽत्र लोकव्यवहारसिद्धये, भवेत्समर्थोऽविकलेन्द्रिय पुमान् ।
तथा नृप. पञ्चजनोपसंग्रहात्, साम्राज्यसौभाग्यकलाय कल्पते ॥७

शिवराज —भगवतो महिम्ना वशीकृतोऽयं जनोऽद्य प्रभृति शिष्यदृष्ट्याऽनुकम्पनीय ।

श्रीरामदासः—वत्स, न केवलं शिष्य इति त्वमसि मम प्रेमास्पदम् । अपितु त्वमसि मे द्वितीयं हृदयम् । त्वदधीनैवास्ति मे साध्यसिद्धि । तन्मया सततं सावधानेनोद्वीक्ष्यते त्वद्विजयध्वजप्रसरः । सम्प्रत्यपि त्वां निर्विण्णम् उपश्रुत्य सम्प्राप्तोऽस्म्यहं तव प्रोत्साहनार्थमेतद्-दुर्गराजम् । अथ त्वां स्वकर्मण्यभिप्रवृत्तमवेक्ष्य प्रतिष्ठेऽहं धर्मप्रवचनाय दुर्गान्तरम् ।

और तुम्हें साम्राज्य की समृद्धि के लिए चारों वर्णों और निषादों को प्रयास करके प्रसन्न रखना चाहिए । क्योंकि—

जिस प्रकार विकलेन्द्रिय पुरुष व्यवहार की सफलता के लिए समार्थ होना है तथैव नृपति पाँचों वर्णों के सग्रह द्वारा साम्राज्यशक्ति के लाभ हेतु सौभाग्य की कल्पना कर सकता है ।७

शिवराज—भगवन् की महिमा से वशीभूत, इस जन पर शिष्य समझकर आप कृपा करें ।

श्रीरामदास—वत्स, तुम केवल शिष्य होने के कारण मेरे प्रिय नहीं हो बल्कि तुम मेरे दूसरे हृदय हो । मेरी सिद्धि तुम्हारे ही अधीन है । इसलिए मैं सावधानी से हमेशा तुम्हारे विजयध्वज का प्रसार देखता रहता हूँ । इस समय भी निराशहृदय तुम्हें प्रोत्साहित करने के लिए इस दुर्ग में उपस्थित हुआ हूँ । अब मैं तुम्हें अपने कर्म में प्रवृत्त देखकर दूसरे दुर्ग में धर्म-प्रवचन करने जा रहा हूँ ।

शिवराज—भगवताऽनुगृह्योऽयं जनो भूयो दर्शनेन ।

श्रीरामदास—भारतैकवीर सम्पादयतु तवाभीष्टं भगवती परदेवता । (इति निष्क्रान्त)

शिवराज—क कोऽत्र भो ।

द्वारपाल—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देव ।

शिवराज—मन्त्रगृहं मार्गमादेशय ।

द्वारपाल—इत इतो देव । (उभौ परिक्रामतः) एतन्मन्त्रगृहद्वारं प्रविशतु देव । (इति निष्क्रान्त) ।

शिवराज—(प्रविश्य) स्वागतं मन्त्रिप्रवराणाम् ।

मन्त्रिण—(उत्थाय) विजयतां महाराज । (इति शिवराजमनूपविशन्ति)

द्वारपाल—(प्रविश्य) देव द्रष्टुकाम कोऽपि यवनतापसो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराज—भगवन्, इस जन को पुनर्दर्शन से अनुगृहीत करें ।

श्रीरामदास—भारत के श्रेष्ठ वीर भगवती तुम्हारे अभीष्ट को पूर्ण करें । (चले जाते हैं)

शिवराज—कौन है ?

द्वारपाल—(प्रवेश कर) देव आदेश दें ।

शिवराज—मन्त्रगृह का द्वार दिखाओ ।

द्वारपाल—इधर, इधर से देव (दोनों चलने का नाट्य करते हैं) यह है मन्त्रगृह का द्वार प्रवेश करें देव । (चला जाता है)

शिवराज—(प्रवेशकर) मन्त्रिवर, स्वागत है ।

मन्त्री—(उठकर) विजय हो महाराज । (शिवराज के बैठने के बाद बैठना है)

द्वारपाल—(प्रवेशकर) देव, द्वार पर कोई यवनतापस्वी दर्शन के लिए आया है ।

शिवराजः—प्रवेशयैनम् ।

द्वारपालः—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

चरः—(प्रविश्य) विजयतां देवः । कथमपि तं सह्यमूषकं गृहीत्वा त्वरमानयामीति बीजापुरेशसभायां प्रतिज्ञाय मार्गे च भवानीप्रतिमां खण्डशः कृत्वा द्वादशसहस्रसैनिकदलेन सह प्राप्तोऽत्र दावाभ्मा बीजापुरसेनानायकः । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—(आकर्ण्य सरोषम्) अरे जाल्म

अविदिततपनान्वयप्रतापः, किमिति मृषा स्वयम् जल्पसे मदान्ध ।
परधनपरिपुष्टमञ्जसा त्वां, महिषबलिं परिकल्पये भवान्याः ॥८

नेताजीः—(सरोषम्) सद्य एव मां तस्याततायिनो निग्रहार्थमादिशतु देवः । अद्यैवाहम्

शिवराज—प्रवेश कराओ ।

द्वारपाल—जैसी आज्ञा । (चला जाता है)

चर—(प्रवेशकर) विजय हो । बीजापुर नरेश का सेनापति उसकी सभा मे सह्याद्रि के मूषक को पकडकर शीघ्रातिशीघ्र उसके सामने प्रस्तुत करने की प्रतिज्ञा कर, मार्ग मे भवानी की मूर्ति को खण्ड-खण्ड करके बारह सौ सैनिको का दल लेकर पहुँच चुका है । (चला जाता है)

शिवराज—(सुनकर क्रोध में) अरे शठ ।

मदान्ध ! यह क्यों व्यर्थ मे बकवास करता है ? क्या तुम्हें सूर्यवंश के प्रताप का ज्ञान नही है । अस्तु । शीघ्र ही मैं, दूसरे के धन से परिपुष्ट तुमको महिष की भाँति भवानी के लिए बलि के रूप मे अर्पण करूंगा ।८

नेताजी—(क्रोध-सहित) देव, उस आततायी को पकड़ने के लिए मुझे तुरन्त आदेश दें । आज ही मैं—

कामक्रोधातिरेकव्यसनविदलितं दुर्विनीतं मदान्ध,
त्वत्कोपाग्निप्रदग्ध परिणतविभव चायुषोऽन्त गत तम्।
हत्वा नि शेषतस्तद्बलमतिविपुल तर्पयित्वा कृपाणम्,
जीवग्राह गृहीत्वा निगडितचरण तेऽन्तिकं प्रापयामि ॥६

शिवराज—(विचिन्त्य) वीर नाय साहसप्रसिपत्तिरुचिता।
त्वत्प्रयासेऽधिष्ठिता.

प्रच्छन्न परिपन्थिनां परिचयं कुर्वन्त्वनल्पं स्पशा,
अध्यक्षा. स्वपदातिसादिनिवहान्संनाहयन्तूद्यताः ।

प्रच्छन्नमिति—स्पशा. चराः परिपन्थिनां, रिपूणामनल्प गाढ परिचयं प्रच्छन्न कुर्वन्तु। अध्यक्षाः सेनाविभागाधिकृताः उद्यताः सन्तः स्वपदातिसादिनिवहान् सन्नाहयन्तु सज्जीकुर्वन्तु। दुर्गाधिपाः निश्चसाः सन्तः दुर्गाणामवने रक्षणे अवहिता. सावधाना भवन्तु। सद्यः प्रतापं रोपयितु विपामन्तक. कालः उदित. प्रादुर्भूत ।

काम, क्रोध आदि व्यसनो से जर्जरित दुर्विनीत और मदान्ध उसको, जो आपकी क्रोधाग्नि से जल रहा है, जिसका वैभव और आयु समाप्त होने को है, मैं उसके समस्त सैन्य दल को मार अपनी तलवार की प्यास बुझाकर, अन्त मे जीवित ही पकड और चरणो मे बेडी पहिनाकर आपके सामने उपस्थित करता हूं।६

शिवराज—(सोचकर) वीर, अभी साहस करने का समय नहीं है। इसलिए तुम्हारे निरीक्षण में—

गुप्तचरों को शत्रुओं के विषय में पूर्णतः परिचय प्राप्त करने दो, पदाति, अश्वारोही आदि सेना-विभागो के अध्यक्ष उन्हें तैयार करें,

दुर्गाणामवने भवन्तवहिता दुर्गाधिपा निश्चला,
सद्यो रोपयितुं प्रतापमुदित कालो द्विषामन्तक. ॥१०

नेताजी —यदाज्ञापयति देव । (इति निष्क्रान्तः)

द्वारपाल —(प्रविश्य) देव, अरातिनिसृष्टो दूतो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराज —प्रवेशयैनम् ।

द्वारपाल—तथा । (इति निष्क्रान्त)

कृष्णाजी —(प्रविश्य) विजयतां महाराज ।

शिवराज —स्वागतं विप्रवर्यस्य ।

कृष्णाजी —अप्यनामयं महाराजस्य ।

शिवराज —अथ किम् ।

दुर्गों के अधिकारी, दुर्गों की रक्षा के लिए निश्चल सावधान रहें, अब हमें अपना पराक्रम दिखाने का अवसर है और शत्रुओं के विनाश समय आ गया ।१०

नेताजी—जो आज्ञा । (चला जाता है)

द्वारपाल—(प्रवेशकर) देव, शत्रु द्वारा प्रेषित दूत द्वार पर प्रतीक्षा कर रहा है ।

शिवराज—अन्दर ले आओ ।

द्वारपाल—जो आज्ञा । (चला जाता है)

कृष्णाजी—(प्रवेशकर) महाराज की जय हो।

शिवराज—विप्रश्रेष्ठ का स्वागत है ।

कृष्णाजी—महाराज कुशल तो हैं ।

शिवराज—हाँ ।

कृष्णाजी—देव उभयतः सैनिकानां विनाशं परिजिहीर्षुरावेदयत्यस्मत्सेनापतिर्यन्महाराजेन स्वकुलपरम्परागतवृत्तिं स्वीकरणेन परित्यज्य बीजापुरेशस्य विरोधमङ्गीकर्तव्यो भृत्यधर्म इति ।

शिवराज—नास्त्यस्माकं बीजापुरेशेन सह कोऽपि विरोधः । किन्तु दुष्टेभ्योऽधिकृतेभ्यः प्रजायाः पालनार्थमयमस्माकमुपक्रमः ।

कृष्णाजी—अस्य महाराजेन स्वायत्तीकृतस्य प्रदेशस्याधिपत्ये तावद् भविष्यति महाराजस्यैव नियोगः । यथा बीजापुरेशशासनमनुपाल्य शाहजीमहाराजः कर्णाटप्रदेशं पालयति तथैव महाराजेन सह्यप्रदेशः पालनीयः । एतदर्थं च महाराजेन यथावकाशं द्रष्टव्योऽस्मत्सेनापतिः ।

शिवराज—अत्र नास्माकं विप्रतिपत्तिः । कः कोऽत्र भोः ।

द्वारपाल—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देव ।

कृष्णाजी—देव, दोनों ओर के सैनिकों का विनाश रोकने के लिए हमारे सेनापति का निवेदन है कि शत्रुता को भुलाकर, परम्परा के अनुसार बीजापुर नरेश का सेवक धर्म स्वीकार कर लें ।

शिवराज—बीजापुर नरेश से हमारा कोई विरोध नहीं है किन्तु दुर्वृत्ति वाले अधिकारियों से प्रजा की रक्षा करने के लिए हम यह साहस कर रहे हैं ।

कृष्णाजी—महाराज द्वारा अधिकृत प्रदेश पर महाराज का ही आधिपत्य एवं शासन रहेगा । जैसे बीजापुरनरेश के शासन को समाप्त कर कर्णाटप्रदेश का पालन करते हैं उसी प्रकार सह्यप्रदेश का पालन भी आपको करना चाहिए। इसके लिए सुविधानुसार हमारे सेनापति से भेंट करें ।

शिवराज—इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है । कौन है यहाँ ?

द्वारपाल—(प्रवेश कर) देव आज्ञा दें ।

शिवराज —प्रापयैनं विप्रवर्यमातिथिकमन्दिरम् । उच्यतां च मद्वचनात्तत्राधिकृतो यदेष द्विजोत्तमो राजोपचारं सम्भावनीय इति ।

द्वारपाल —तथा । (इति दूतेन सह निष्क्रान्तः)

शिवराज —मन्त्रिण, अनेन किमपि हृदये कृत्वाऽन्यदेव मन्त्रितमिति लक्ष्यते । यत

अयप्रयुक्तं मधुरैर्वचोभि, प्रतारणायं ध्रुवमुद्यतस्य ।
कालुष्यमन्तः स्थितमस्य केवलं, व्यनक्ति विच्छायमुखच्छवि स्वगम् ॥११

मन्त्री—एवमेतत् । यत

नेत्रप्रसाद स्वयमाननद्युति स्वाभाविकी चैव वच प्रवृत्ति ।
अल्पोपचारो गतमन्यविवलव, विवृण्वतेऽन्तर्हृदयस्यमार्जवम् ॥१२

शक्यमपि ज्ञातव्यमस्य मनोगतम् ।

शिवराज—इन द्विजश्रेष्ठ को अतिथिभवन में पहुँचाओ । और मेरे आदेशानुसार वहाँ के अधिकारी से कहो कि इन द्विजश्रेष्ठ का राजोचित रीति से सम्मान (आतिथ्य) होना चाहिए ।

द्वारपाल—जो आज्ञा । (दूत के साथ चला जाता है)

शिवराज—मन्त्रियो, यह अपने हृदय में कुछ और ही गुप्त रखकर कुछ और ही बोलता है । क्योंकि—

नीतियुक्त मधुरवाणी से हम लोगों को ठगने के लिए उद्यत इसके मुख की धुँधली कान्ति इसके अनुचित अन्तःकरण का आभास करा रहा है ।११

मन्त्री—ऐसा ही है । क्योंकि

उसकी दृष्टि, मुखाकृति, वाणी की स्वाभाविकता, नियमित व्यवहार और निर्भयता, उसके हृदय में स्थित कुटिलता का आभास कराते हैं ।१२

किसी प्रकार हमें इसके मन की बात जाननी चाहिए ।

शिवराज—पूर्वं तावद्यवनसेनापतये विसृष्टोऽस्मद्दूतस्तमावेदयतु यद्

प्रमादतस्त्वादृतसाहस प्रभुर्महद्विरोधादनुतप्यमान ।
निरीक्ष्य नेत्रप्रतिघाति ते महो धैर्यच्युत प्रार्थयते तवाश्रयम् ॥१३

अनेनोक्तिसञ्चयमानः स मदान्धोऽस्मन्नयपाशधृतो भविष्यति ।

मन्त्री—सद्य एव प्रेषयामि पन्तोजीगोपीनाथमेतदर्थसंसिद्धये ।
(इति निष्क्रान्त)

शिवराज—अहमपि तावत्प्रत्यर्थिदूत विविक्त उपगृह्णामि । (इति मन्त्रगृहान्निर्गत्य परिक्रामति । परितो विलोक्य) अहो

निशीयमाक्रान्ततमिस्रभीषणा, पापात्मना पापचिकीर्षिते हिता ।
स्वधर्मदक्षे नृपतौ तु जाग्रति, स्वपन्ति सर्वा अकुतोभया प्रजा. ॥१४

शिवराज—सर्वप्रथम यवनसेनापति के पास अपना दूत भेजकर कहलाएँ कि

प्रमादवश शिवाजी ने यह कार्य करने का साहस किया और अब यह महाशक्तिशाली से विरोध करने के कारण पश्चाताप कर रहा है, आँखो को चकाचौंध करने वाले आपके महातेज को देखकर धैर्य खो चुका है और आपकी शरण चाहता है ।।१३

इस प्रकार वचनो से सिंचित होकर वह मदान्ध हमारे नीतिपाश मे बँध जायगा ।

मन्त्री—शीघ्र ही पन्तोजी गोपीनाथ को इस कार्य की सिद्धि के लिए भेजें । (चला जाता है)

शिवराज—मैं भी शत्रुपक्षीय दूत को छोडकर आता हूँ । (मन्त्रणा-गृह से निकलकर घूमता है । चारो ओर देखकर) अहो,

भीषण अन्धकार से युक्त यह भयानक रात्रि पापकर्मियो के पापकर्म-सम्पादन हित उपयुक्त है परन्तु धर्मनिष्ठ और कर्तव्य-पालन मे दक्ष राजा सजग रहे तो उसकी प्रजा निर्भय होकर सोती है ।१४

(पुरतो विलोक्य) एतदावेशिकमन्दिरम्। यावत्प्रविशामि।

(ततः प्रविशति सुवर्णमञ्चावस्थितोऽरातिदूत.)

(पटोक्षेप.)

दूत :—(ससंभ्रममुत्थाय) अहो महाराजः। कोऽयं मय्यसाधारणोऽनुग्रहः।

शिवराज :—(*महार्हं रत्नमुपायनीकृत्य*) धर्म एवैष क्षत्रियाणां यद् विप्रोपासनम्। (इति मञ्चान्तरमुपविशति)

दूत :—(उपविश्य) देव त्वादृशा धर्मज्ञा एवार्हन्ति लोकतन्त्राधिकारम्।

शिवराज :—विप्रवर्य, सर्वत्र ब्रह्माधिष्ठितमेव क्षत्रं समृध्यते। बृहस्पतिपुरोगमा देवा विप्रपुरोगमाश्च राजन्या एव युज्यन्ते विजयश्रियेति पुराणप्रसिद्धिः।

दूत :—महाराज संप्रति तु क्षत्रापचारपरिपीडितानां विप्राणां यवनेशोपाश्रयादृते नान्यदवलम्बनम्।

(सामने देखकर) यह अतिथिगृह है। इसमें प्रवेश करूँ।

((स्वर्णमंच पर स्थित शत्रुदूत का प्रवेश)

दूत—(घबड़ाया हुआ उठकर) अरे महाराज। यह अनुग्रह क्यों ?

शिवराज—(बहुमूल्य रत्न देते हुए) क्षत्रियों का धर्म ही ब्राह्मणों की पूजा है। (दूसरे मंच पर बैठते हैं।)

दूत—(बैठकर) आप जैसे धर्मज्ञ ही लोक-शासन के अधिकारी हैं।

शिवराज—विप्रवर्य, ब्राह्मणों की सहायता से ही क्षत्रियों की समृद्धि होती है। पुराण सिद्ध है कि बृहस्पति के नेतृत्व में देवता और ब्राह्मणों के नेतृत्व में राजा विजय प्राप्त करते हैं।

दूत—महाराज। इस समय तो क्षत्रियों के व्यवहार से पीड़ित ब्राह्मणों के लिए बीजापुरनरेश के अतिरिक्त अन्य कोई अवलम्ब नहीं है।

शिवराज :—तथ्यमेवाभिहितं विप्रवर्येण । अतएवैतान्नृपापसदानुन्मूलयितुं मया शस्त्रमुद्धृतम् ।

दूत :—सर्वथाऽभिनन्द्य एव तव धर्म्यो व्यवसायः । परन्तु प्रथममेव बलिना यवनेशेन विग्रहमारभमाणस्य तव महती नयच्युतिः ।

शिवराज :—संभाव्यमेतत् । तथापि न केवलं यवनसहाय एव प्रभवति प्रशासितुं निजराष्ट्रं यवनेश्वरः । सन्ति तत्राप्यधिकृताः स्वधर्मपरता धर्मवीरा ये पुनः समुपस्थित उपप्लवे ममोपकरिष्यन्तीत्यवधार्यैव मयाऽदृत एव उपक्रमः ।

दूत :—परन्तु स्वधर्मनिष्ठावतामपि भर्तृ निष्ठापालनेन स्वपरिहार्य एव कृतघ्नतादोषः ।

शिवराज :—विप्रवर्य, कोऽयं व्यामोहो भवादृशानां वेदधर्मतत्त्वविदुषाम् । 'स्वधर्मेनिधनं श्रेयः' इति तु साक्षाद्भगवतैव तार-

---

शिवराज—द्विजश्रेष्ठ, सत्य ही कह रहे हैं आप । इसीलिए इन दुष्ट राजाओं का समूल नाश करने के लिए मैंने शस्त्र उठाया ।

दूत—यह आपका धर्म-व्यवसाय सर्वथा प्रशंसनीय है । परन्तु शक्तिसम्पन्न बीजापुरनरेश से युद्ध-घोषणा कर देना आपकी राजनीतिक भूल है ।

शिवराज—भले ही यह सम्भव हो तथापि बीजापुरनरेश केवल यवनों की सहायता से शासन नहीं कर सकते । उनके यहाँ धर्मवीर लोग भी हैं जो आवश्यकता पड़ने पर कठिन समय में मेरी सहायता करेंगे, इसी धारणा से मैंने यह प्रयास प्रारम्भ किया है ।

दूत—परन्तु अपने धर्म में निष्ठावान् रहकर भी, स्वामी के प्रति निष्ठा का निर्वाह न करने पर कृतघ्नता का दोष होगा ही ।

शिवराज—विप्रवर्य, आप जैसे वेद और धर्म तत्त्व निष्णात के लिए भी भ्रम (संकट) हो रहा है ।' अपने धर्म में रहकर मर जाना ही श्रेयस्कर है' यह साक्षात भगवान् ने उच्चस्वर में उद्घोषित किया है ।

स्वरेणोद्घोषितम्। यदि स्वधर्मनिष्ठानां धर्मार्थमात्मनाशोऽपि श्रेयोस्तदा कियान् भर्तुर्विप्रकारः। पुराऽपि धर्मार्थं

वज्रस्य निर्माणविधौ सुरार्थितः, स्वयं महर्षिस्तनुमप्यहासीत्।
शिरः कुठारेण च जामदग्न्यश्चिच्छेद मातुर्गुरुणा नियुक्तः ॥१५

दूत :—देव नात्र प्रवर्तते मे प्रतिवचनम्।
शिवराज :—अये द्विजोत्तम,

भवन्ति विप्रा यदि धर्ममूर्तयो, विरोधिनो धर्मपरस्य भूभृतः।
तदा प्ररोहैः सह धर्मपादपः, समूलमुच्छेदमवाप्नुयाद् ध्रुवम् ॥१६

दूत :—(विचिन्त्य) कीदृशं साहाय्यमपेक्षते महाराजः।
शिवराज :—केवलं तत्त्वतो ज्ञातुमिच्छामि सेनापतेश्चिकीर्षितम्।

यदि अपने धर्म में निष्ठावान् रहकर धर्मार्थ आत्मनाश भी श्रेयस्कर है तो स्वामी के, अपमान से क्या? प्राचीनकाल में भी धर्मार्थ—

महर्षि दधीचि ने देवों की याचना सुनकर वज्र-निर्माणार्थ अपना शरीर त्याग दिया। परशुराम ने पिता के वचन का पालन करने के लिए माता का शिर कुठार से काट डाला।१५

दूत—देव, इसके विरुद्ध मैं कुछ नहीं कह सकता।

शिवराज—द्विजश्रेष्ठ,

धर्ममूर्ति ब्राह्मण यदि धर्मनिष्ठ राजा के विरोधी हो जाँय तो धर्मवृक्ष का उसकी शाखाओं-सहित निश्चित ही समूल नाश सम्भव है।१६

दूत—(सोचकर) कैसी सहायता आप चाहते हैं महाराज?

शिवराज—सेनापति की योजना मात्र सही-सही जानना चाहता हूँ।

दूत :—(स्वगतम्) किं कर्तव्यो मया रहस्यभेदः । उतघातितव्यो धर्मावतारः । अस्तु । धर्मावतारस्यैव रक्षणेन रक्षितो भविष्यति धर्मो नान्यथा । (प्रकाशम्) देव न किमप्यस्ति तवावाच्यम् । तच्छृणु । कथमपि त्वां विश्वास्यात्मनः प्रतिज्ञां निर्वाहयितुमुत्कण्ठतेऽस्मत्सेनापतिः ।

शिवराज :—अहो नु खल्वनुजीवितोऽस्मि । द्विजोत्तम न कदापि स्मृतिपथमतीतो भविष्यति तवायमनुग्रहः । परंत्ववशिष्यते किंचित्कर्त्तव्यान्तरम् ।

दूत :—निशङ्कमादिशतु धर्मवीरः ।

शिवराज :—विप्रवर्य, 'अतीव भयाकुलो शिवराजः महता सैन्येन परिवृतं त्वामुपासर्पितुं न प्रभवति । अतो दुर्गपरिसर प्रतिष्ठापितोपकार्यामुपेत्य स्वयमेकाकिना स हस्तगतः कर्तव्यः ।

दूत—(स्वगत) क्या रहस्यभेदन मुझे करना चाहिए । क्या धर्मावतार की हत्या होने दूँ ? धर्मावतार की ही रक्षा करने से धर्म की रक्षा होगी अन्यथा नहीं । (प्रकाश) देव कुछ नहीं है, जो आप से छिपाऊँ । अतः सुनिए । हमारे सेनापति किसी प्रकार आपको विश्वस्त करके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करना चाहते हैं ।

शिवराज—द्विजश्रेष्ठ, आपका यह अनुग्रह कभी भी भूल नहीं सकता । परन्तु इसके अतिरिक्त भी कुछ करना शेष है ।

दूत—निश्शंक होकर कहो धर्मवीर ।

शिवराज—द्विजश्रेष्ठ, अपने सेनापति से कहो-'विशाल सेना से घिरे हुए रहने के कारण अत्यन्त भयभीत शिवराज आपके पास आने का साहस नहीं कर सकता । अतः दुर्ग के समीप राज-शिविर में आप अकेले उसे मिलकर हस्तगत कर लीजिए । अन्यथा उसके कहीं

अन्यथा तस्मिन् कुत्रापि पलायिते तव प्रतिज्ञाहानिप्रसङ्गः।'—इति समनुनीय संपादयावयोरेकान्त समागमम्। अतः परं यद्भावि तद्भवतु।

दूतः—देव अत्र विस्रब्धो भव। त्वया पुनरात्म दूतमुखेनैतदेव तस्य संदेष्टव्यम्।

शिवराजः—तथा।

दूतः—तत एव तावत् प्रतिष्ठे देवस्याभीष्ट संपादनाय।

शिवराजः—अहमपि मन्त्रगृहमुपेत्य प्रतिपालयामि परिणाम्य-वसायम्।

(इति निर्गत्य परिक्रामति)

(स्वगतम्) दिष्ट्या सुसंपन्न एष पूर्वरङ्गः।

क्षेत्रेऽपि सीरोत्कषणावकल्पिते,उप्त्वा सुबीजानि समृद्धभूमौ।
समुद्गतेष्वेव नवाङ्कुरेषु,क्षेत्री समुत्पश्यति शस्य संपदम्॥१७

भाग जाने पर आपको प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं हो पायेगी।' इस प्रकार हम दोनों का एकान्त मिलन करायें। उसके पश्चात् जो होना होगा, होगा।

दूत—देव, विश्वास रखें। आप भी ऐसी ही सूचना अपने दूत से भिजवा दें।

शिवराज—ठीक है।

दूत—देव का अभीष्ट पूर्ण करने के लिए मैं चला।

शिवराज—मैं भी मन्त्रणागृह में पहुँचकर परिणाम की प्रतीक्षा करता हूँ।

(उठकर चलता है)

(स्वगत) भाग्य से पहली योजना सफल हुई।

कृषक खेत को हल से भली भाँति जोतने के पश्चात् अच्छे बीज बोकर, जब उसमें नव अंकुरों को उगा देखकर शस्य की अच्छी पैदावार की आशा करता है।१७

अनेनाक्षिप्तेऽपि भाविविजये कथं निर्वृतिं नाधिरोहति मेऽन्तरात्मा । यावदन्तःपुरमुपेत्याम्बया सह संमन्त्रये । (पुनः परिक्रम्य) अहो सा तु मामेव प्रतिपालयन्त्यद्याप्यवतिष्ठते ।

(इति अन्तःपुरं प्रविशति)

(पटाक्षेपः)

(ततः प्रविशति राजमाता राज्ञी च)

राजमाता—वत्स, अप्यनुकूलितः प्रत्यर्थिदूतः ।

शिवराजः—अथ किम् परन्तु कदाचिद् दैवतोऽत्र विपरीतमापद्येत तदानीं त्वयाऽप्यधिष्ठितेनामात्यराजेन प्रवर्तनीयः स्वराज्यसंस्थापनोद्योग इत्येषा ममाभ्यर्थना ।

राजमाता—वत्स, देवतानुग्रहशालिनस्ते नास्त्यपायशङ्कावसरः । तद्

इस सफलता से भावी विजय सम्भावित हो जाने पर मेरा हृदय शान्ति क्यों नहीं पा रहा है। चलूँ अन्तःपुर में माता जी से मन्त्रणा करूँ। (पुनः घूमकर) वह तो इस समय भी मेरी प्रतीक्षा करती हुई बैठी हैं। (अन्तःपुर में जाते हैं)

(पट-परिवर्तन)

(उसके पश्चात् राजमाता और रानी का प्रवेश)

राजमाता—वत्स, शत्रुपक्षीय दूत को अनुकूल कर लिया ?

शिवराज—हाँ, परन्तु कदाचित् दुर्भाग्य से प्रतिकूल हो जाय ? उस स्थिति में मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि स्वराज्य-संस्थापना का जो उद्योग प्रारम्भ है वह आप चलाती रहें।

राजमाता—वत्स, देवताओं का तुम्हारे ऊपर अनुग्रह है, हानि की शंका का अवसर नहीं है। अतः

यवनवाजिपदाति समुद्धतं, रिपुबलं परिमृद्य रणाङ्गणे ।
विजयदुन्दुभिनिः स्वननन्दितः, पुनरुपेत्य विनोदय मातरम् ॥१८

वत्स, रक्षतु त्वां समन्ततः समराधिष्ठात्री परदेवता ।
शिवराज :—शिरसाऽभिनन्द्यन्ते तवाशिषः ।
राजमाता—परास्ताः सन्तु ते विद्विषः ।
राज्ञी—विजयश्रीविलसितस्य भवतु तवाचिरेण मङ्गलागमनम् ।
शिवराज :—कः कोऽत्र भोः ।
कंचुकी—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देव ।
शिवराज :—मन्त्रगृहमार्गमादेशय ।
कंचुकी—इत इतो देवः । (उभौ परिक्रामतः)
(पटीक्षेप.)
एतन्मन्त्रगृहद्वारं प्रविशतु देव । (इति निष्क्रान्त)

मुगलों की अश्वारोही, पैदल सेना-युक्त शक्ति शाली (शत्रु) बल का रणक्षेत्र मे मर्दन कर विजयदुन्दुभि के स्वर से हर्षितमन आकर माता को आनन्दित करो ।१८

वत्स, परमाशक्ति रणदेवी हर प्रकार तुम्हारी रक्षा करें ।
शिवराज—तुम्हारा आशीष शिरमाथे ।
राजमाता—तुम्हारे शत्रु परास्त हो ।
राज्ञी—विजयश्री से शोभित शीघ्र ही तुम्हारा मगलागमन हो ।
शिवराज—कौन है ।
कंचुकी—(प्रवेशकर) आज्ञा दें देव ।
शिवराज—मन्त्रणागृह का मार्ग दिखाओ ।
कंचुकी—इधर, इधर से देव । (दोनो चलने का नाट्य करते हैं)
(पटपरिवर्तन)
यह मन्त्रणागृह का द्वार है देव चलें । (चला जाता है)

(ततः प्रविशन्ति मन्त्रगृहावस्थिता मन्त्रिणो दूतश्च)

शिवराज :—(प्रविश्य) अभ्युपस्थितोऽस्मद्दूतः ।

मंत्री —एष देव प्रतिपालयंस्तिष्ठति ।

शिवराज :—(दूतं प्रति) किमध्यवसितं यवन सेनापतिना ?

दूत :—ज्ञातमभीष्टं देवस्य । अद्य प्रातरेवायमभिकाङ्क्षति देवस्य समागमावसरम् ।

शिवराज :—भद्र सद्य एव निवृत्य तमावेदय 'दुर्गोपत्यकायामुपकल्पितामुपकार्यामुपेत्य यथासमयं त्वया द्रष्टव्यः शिवराजः' इति ।

दूत —तथा । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराज :—सचिव त्वं साम्प्रतमुपत्यकायां हिरण्यरत्नमण्डितामुपकार्यामुपकल्पय ।

सचिव :—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

(उसके बाद मंत्री एवं दूत मंत्रणागृह में स्थित दिखायी पड़ते हैं)

शिवराज—(प्रवेशकर) क्या हमारा दूत वापस हुआ ?

मंत्री—देव की प्रतीक्षा में यह बैठा है ।

शिवराज—(दूत से) यवन सेनापति ने क्या निर्णय किया ।

दूत—देव की इच्छानुसार ही हुआ । प्रातःकाल ही देव से मिलना चाहते हैं ।

शिवराज—शीघ्र ही लौटकर जाओ और सूचित करो कि दुर्ग के समीप राज शिविर में निर्दिष्ट समय पर शिवराज से मिलें ।

दूत—जो आज्ञा । (चला जाता है)

शिवराज—सचिव, तुम शीघ्र ही दुर्ग के निकट बगल में हिरण्य रत्नों से सज्जित शिविर निर्मित करायें ।

सचिव—जो आज्ञा । (चला जाता है)

शिवराज :—सेनापते त्वं शैलोऽन्तस्थपादपान्तरितपदातिनिवहो मार्गं एव मां प्रतिपालय ।

नेताजी :—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

मन्त्री—देव सायुधवर्मधरेण त्वया द्रष्टव्यः कुटिलः परिपन्थी ।

शिवराज :—प्रतिपन्नोऽहं मन्त्रिवचनम् ।

(इति वर्मं शिरस्त्राणं वृश्चिकास्त्रं व्याघ्रनखांश्च धारयति)

मंत्री—मम भवतु तानाजीवीरस्तव सहायः ।

तानाजी :—पूर्वमेवादिष्टोऽस्म्यम्बया धूर्तयवनसमागमे तव पार्श्वचरो भवितुम् ।

शिवराज :—जीवितसंशयेऽस्मिन्व्यतिकरे त्वमेवार्हसि मम पार्श्वस्थानम् । (ऊर्ध्वं विलोक्य) । अहो प्रभातकल्पा हि रजनी । यावत्साधयाम । (इति सपरिवारः तुरगमारुह्य परिक्रामति)

शिवराज—सेनापति, तुम पर्वत के पास वृक्षों की आड़ में अपनी पैदल सेना के साथ मुझे रास्ते में मिलें ।

नेताजी—जो आज्ञा । (चला जाता है)

मंत्री—देव, शस्त्रास्त्र सहित कवच धारण करके आप उस कुटिल शत्रु से मिलें ।

शिवराज—मन्त्रिवर के कथनानुसार ही मैं करूँगा ।

(कवच, शिरस्त्राण, वृश्चिकास्त्र, बघनख धारण करते हैं)

मंत्री—तानाजी वीर आपके सहायक रहें ।

तानाजी—धूर्त यवन से समागम के समय आपका अंगरक्षक रहने के लिये राजमाता ने पहले ही आदेश दिया है ।

शिवराज—हाँ, इस समय जब मेरा जीवन संकटमय है, केवल तुम ही अंगरक्षक के रूप में साथ रहने योग्य हो । (ऊपर देखकर) ओह रात्रि समाप्त, प्रभात होने वाला है । हम प्रस्थान करें । (सेवकों के सहित घोड़े पर चढ़कर घूमता है)

(परितो विलोक्य) अमात्य क्षण मात्रेणैव संप्राप्ता वयं शैलाधरोहसंक्रमम् । एषोऽस्मदागमन प्रतीक्षमाणस्तिष्ठति सपरिजनो नेताजीः । (ततः प्रविशति सपरिजनो नेताजी)

नेताजी :—(दूरं विलोक्य) अहो, उपस्थितो देव. ।

अजवतुरगकल्पितासनोऽयं, कवचधर करवालकुन्तनद्धः ।
अरुणितनयनो वपा महोग्र ; सरभसमेत्यभितो द्विषां कृतान्तः ॥१९

(शिवराजमुपसृत्य) विजयतां देव. । अस्ति सर्वं सुव्यवस्थितम् ।

शिवराज :—(परितो विलोक्य) वीर पश्य,

एतद्विपवतपगुल्मलताविताननुरसङ्कुलं गहनं गहनान्तरालम् ।
प्रच्छन्नसत्त्वमभितः पवनावधूतमुत्लोलवीचिजलधेः समता विधत्ते ॥२०

नेताजी :—देव, अत्रैव निलीयन्तेऽस्मत्सैनिक निवहाः ।

(चारो ओर देखकर) अमात्य, क्षणभर में ही हमलोग पर्वत की तलहटी के सकीर्ण मार्ग पर पहुंच गए । नेताजी हमारे आगमन की प्रतीक्षा मे साथियों के साथ बैठे हैं । (उसके बाद सैनिकों-सहित नेताजी का प्रवेश)

नेताजी—(दूर देखकर) अहो, देव आ गए ।

शीघ्रगामी तुरग पर सवार, कवच धारण किये, तलवार, भाला लिए, लाल-लाल आखों और महुतेज के कारण भयानक, शत्रुओं के लिये यमराज चले आ रहे हैं ।१९

(शिवराज के पास पहुँचकर) विजय हो देव । सब कुछ सुव्यवस्थित है ।

शिवराज—(चारो ओर देखकर) वीर देखो—पर्वत के पार्श्व में यह वृक्ष, गुल्म और वितान के कारण गहन वन, जिसमें सर्वत्र प्राणियों का निवास है, वायु चलने के कारण आन्दोलन से लहरें भी उठने से सारा वन समुद्र की समता प्रकट कर रहा है ।२०

नेताजी—देव, यहीं हमारे सैनिक छिपे हुए हैं ।

शिवराज —त्व तावच्छङ्खध्वनेनास्मसकेत गृहीत्वा द्रुतमभियुङ्क्ष्वाराति सैन्यम् ।

नेताजी —यद्देव आज्ञापयति ।

शिवराज —वय तावत्पुरतो व्रजाम । (इति सपरिवारो निष्क्रान्त)

नेताजी —एह्येहि सेनापते, अवगमय सैनिकान् सकेतक्रमम् ।

एसाजी —तथा । (इति निष्क्रान्त)

नेताजी —गुल्माध्यक्ष, सज्जी कुरु वैतालिकगणान् प्रयाणपटह-ध्वननाय ।

गुल्माध्यक्ष —यदार्य आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्त)

एसाजी —(प्रविश्य) आर्य गृहीत सकेतक्रम सैनिकगणै ।

नेताजी .—साधु ।

शिवराज—तुम हमारे शङ्खनाद (बिगुल की आवाज) का सकेत पाकर तुरन्त शत्रु सेना पर आक्रमण करना ।

नेताजी—जैसी आज्ञा देव ।

शिवराज—हम आगे बढ़ते हैं । (सेवको सहित जाते हैं)

नेताजी—सेनापते, सैनिको को सकेत समझा दें ।

एसाजी—जो आदेश । (चला जाता है)

नेताजी—गुल्माध्यक्ष-वैतालिको को प्रस्थान कालीन नगाड़े बजाने के लिए तैयार करें ।

गुल्माध्यक्ष—जैसी आपकी आज्ञा । (चला जाता है)

एसाजी—(प्रवेश कर) आर्य, सैनिकगण सकेत का अर्थ भली भाँति समझ लिए हैं ।

नेताजी—ठीक है ।

गुल्माध्यक्ष :—(वैतालिकैः सह प्रविश्य) आर्य उपस्थिता यथा-देशमेते वैतालिका ।

नेताजी —(तारस्वरेण) भवत सर्वे सावधाना ।

(पटीक्षेप)

(भृङ्गध्वनिमाकर्ण्य) प्रवर्त्तन्तां वो रणातोद्यानि । शीघ्रमभि सरत सर्वे सेनानिवहा । (इति सपरिजनो निष्क्रामति)

वैतालिक :—(पटहध्वनिनोद्गायन्ति । नेपथ्ये पादाघात ध्वनि ।

(भूपालीरागेण दादरातालेन गीयते)

भट्टा भदताट्टमेव–हर हर हर महादेव ॥

प्रकटयत कदप्रतापपरिकुलघटितोपतापहृष्टा, भवताट्टमेव०॥१

प्रबलराज्यमदविकारकुटिलपरकृतापकारदृष्टा, भवता०॥२

गुल्माध्यक्ष—(वैतालिकों के साथ प्रवेश कर) आदेशानुसार ये वैतालिक उपस्थित हैं।

नेताजी—(तीव्र स्वर में) सभी सावधान हो जाओ।

(भृङ्ग का स्वर सुनकर) नगाड़े बजाओ। सभी सैन्य समूह तुरन्त प्रस्थान करें।

वैतालिकगण—(नगाड़े की ध्वनि के साथ गाते हैं। नेपथ्य में पैरों की ध्वनि) (भूपाली राग, दादराताल में गाया जाता है)

वीरो, तीव्रस्वर से बोलो—हर, हर, हर महादेव।

अपने शौर्य, पराक्रम को प्रकट कर शत्रुकुल को सन्तप्त करो उससे हर्षित हो, राज्यमद के दुरभिमानी, प्रबल, कुटिल दूसरों को कष्ट देने के कारण उसके अपकार से रुष्ट होकर, तीक्ष्ण बाणों और

निशितवरकृपाणपातसाधितरिपुकटकघाततुष्टा, नदता०॥३
विजयपटहपटुनिनादपाटितपरिपन्थिमानहृष्टा नदताट्टमेव०॥४

(निष्क्रान्ता सर्वे)

समाप्तोऽयं दूत भेदनामा

चतुर्थोऽङ्कः



कृपाण के सन्धान द्वारा शत्रु-सेना पर घात करके सन्तुष्ट, विजय-दुन्दुभि के निनाद से शत्रु के मद को शान्त करके, वीरो तीव्र स्वर में, अट्टहास-सहित बोलो—हर, हर, हर महादेव ॥

(सभी चले जाते हैं)

दूतभेद नामक

चौथा अङ्क समाप्त



पञ्चमोऽङ्कः

(तत प्रविशतो गूढचरो)

प्रथम —नून खलु प्रकटावलिप्तस्य यवनमातङ्गस्य वधेन समुपार्जित लोकोत्तर यशो देवेन।

द्वितीय —अर्जित त्वेतत्प्राणसंशयेन।

प्रथम —अहो कथ नामैतत्।

द्वितीय —आलिङ्गनमिषेणासौ जाल्मो देव कक्षान्तरे समीक्ष्य यावदसिप्रहारेणास्य शिरो भेत्तुमुद्युङ्क्ते तावदेव देवेन व्याघ्रनखे-विपाटितमस्य बृहदन्त्रम्। देवस्य शिरस्त्राणेन च विफलीकृतोऽस्य निस्त्रिंशप्रहार। अत्रान्तरे साहाय्यार्थमाक्रोशतस्तस्य पूर्वकायो विच्छिन्नःप्रचण्डविक्रमकर्कशेन धर्मावतारेण देवेन। तदानीमेव देव

पाँचवाँ अंक

(उसके बाद दो गुप्तचरों का प्रवेश)

प्रथम—निश्चित ही, शरीराभिमानी यवन सेनापति का वध कर हमारे देव को लोकोत्तर यश मिला।

द्वितीय—प्राप्त तो हुआ, प्राण संशय में डालकर।

प्रथम—यह किस प्रकार ?

द्वितीय—वह शठ, जैसे ही देव को आलिंगन के बहाने अपने कक्ष में ले जाकर तलवार से उनका शिर काटना चाहा, देव ने बघनख द्वारा उसके उदर को फाड़ डाला। उसकी तलवार का घात देव के शिरस्त्राण पर पड़कर निष्फल हो गया। उस बीच सहायता के लिए चिल्लाते हुए उसके धड़ को प्रचण्ड विक्रम वाले धर्मावतार देव ने विच्छिन्न कर

प्रहर्तुमुद्यतस्तस्याङ्गरक्षको यमसदनं प्रेषितस्तानाजीवीरेण। ततश्च संकेतानुरोधेनाक्रम्य परास्तं बीजापुरेशसैन्यमस्मत्सेनापतिना नेताजी वीरेण।

प्रथम —उप्तमनेन खलु साम्राज्यबीजं महाराजेन।

द्वितीय —अथ किम्। ततः प्रभृति युद्धे गृहीतमुक्ता यवनसैनिका अपि विहाय यवनेशं महाराजाश्रयमभिवाञ्छन्ति।

प्रथम —भवन्ति सर्वेऽपि न्यायप्रभुतस्य पक्षपातिनः।

द्वितीय —अनन्तरं च विजित्य पन्हालाप्रभृतीन् यवनदुर्गान् जुन्नरप्रभृतींश्च मोगलदुर्गान् प्रवर्तितं तत्र धर्मचक्रं महाराजेन। ततश्च भाविमयवनाक्रमणमपेक्षमाणो देवो नानादुर्गसंरक्षणार्थं मन्त्रिणो नियुज्य स्वयं पन्हालादुर्गमध्यास्त। अचिरेणैवावरुद्धोऽयं दुर्गराज

दिया। उसी समय देव पर प्रहार करने के लिए उद्यत उसके अंग रक्षक को तानाजी वीर ने यमलोक को भेज दिया। उसके पश्चात् पूर्व नियोजित संकेतानुसार हमारे सेनापति नेताजी वीर ने आक्रमण करके बीजापुर नरेश की सेना को परास्त कर दिया।

प्रथम—इस प्रकार हमारे महाराज ने साम्राज्य-स्थापना का बीजारोपण कर दिया।

द्वितीय—और क्या, उसके बाद युद्ध में बन्दी बने यवन सैनिक मुक्त होने पर यवनराज को छोड़कर महाराज का आश्रय चाहते है।

प्रथम—सभी न्यायप्रिय के ही पक्षपाती होते हैं।

द्वितीय—और उसके पश्चात् पन्हाला और जुन्नर आदि मुगल दुर्गों को जीतकर महाराज ने धर्मराज्य स्थापित कर लिया। फि यवन आक्रमण की सम्भावित आशंका से, देव दुर्गों के संरक्षणार्थ मंत्री को नियुक्त कर स्वयं पन्हाला दुर्ग में स्थित हैं। शीघ्र ही इस पर पचीस हजार सैनिकों को लेकर यवन सेनापति ने आक्रमण

पञ्चविंशतिसहस्रदलसमन्वितेन यवनसेनापतिना । ततो महता नय-प्रयोगेण प्रतार्य, स यवनसेनापतिमतीतायां तमस्विन्या निशीथ एव निभिद्यावरोधकगणमल्पपरिजन. प्रस्थितो देवो विशालगडदुर्गम् ।

प्रथम :—अहं तावत्सुगुप्तेन वर्त्मना सम्राजेऽपेत्य श्रावयामि देवं मोगलेन्द्रोदन्तजातम् ।

द्वितीय :—अहमपि प्रविश्य यवनदलमुपलभेय तत्सेनापते-श्चिकीर्षितम् ।

(ततः प्रविशति विशालगडदुर्गोपत्यकावस्थित सपरिजन शिवराज.)

बाजी :—देव दिष्ट्या सम्प्राप्ता वयं विशालगडदुर्गपरिसरम् । पश्य

विशालवप्रोन्नतगण्डभित्तिसद्दुंदक्रमो हस्तमिवाग्रमार्गं ।
दुर्गोत्तमोऽयं परिराद्धपार्श्वो ; महेन्द्रमातङ्ग विभो विभाति ॥१

तत्सत्वरमेनमधिरोहतु भारतेन्द्रः ।

किया । उसके पश्चात् कूटनीतिक चाल से उसे ठग कर, गत रात्रि में देव ने अवरोधकों के बीच से अपने थोड़े से सेवकों सहित विशालगड दुर्ग को प्रस्थान कर दिया ।

प्रथम—तो मैं गुप्तमार्ग से वहाँ पहुँचकर मुगल सम्राट् के क्रिया कलापों से अवगत कराऊँ ।

द्वितीय—मैं भी यवनदल में प्रविष्ट होकर उसके सेनापति की नीति का ज्ञान प्राप्त करूँ ।

(उसके बाद विशालगड दुर्ग में सेवकों सहित शिवराज खड़े हैं)

बाजी—देव, भाग्य से हम लोग विशालगड दुर्ग के पास पहुँच गए । देखें उत्तम यह विशालगड दुर्ग, अपनी विशालता, ऊँचे-ऊँचे गुम्बदों के कारण, उन्नत गण्डस्थल के सदृश, सूड की भाँति अग्रभाग वाला, दुरा-क्रमणीय, विस्तृत पार्श्वभाग से शोभित इन्द्र के गज ऐरावत की शोभा धारण कर रहा है ।१

हे भारतेन्द्र । तुरन्त इस पर चढ़ें ।

शिवराज :—(परितो विलोक्य) वीर

आसीन्नभो मद्विशाद समन्तादाच्छादितं किं घनमण्डलेन ।
(विचिन्त्य ससंभ्रमम्)
एतद् ध्रुवं मामनुधावतां द्विषां, पदोद्धतं रेणुभिरस्ति धूसरम् ॥२

तदत्र यत्प्राप्तकालं तदस्माभिरविलम्बेनानुष्ठेयम् ।

बाजी :—देव नास्ति त्वराग्रौत्सुक्य कारणम् । यतः

दासस्तवायं करवालपाणि, संबाधवर्त्मन्यकुतोभयः स्थितः ।
अल्पानुगो. शत्रुदलं निपातयन्; निरोत्स्यति द्राक परिपन्थिसंचरम् ॥३

(दूरं विलोक्य ससंभ्रमम्) देव, त्वरय, त्वरय । सम्प्राप्तं यवनदलम् । अधिरुह्य च दुर्गमावेदय मां पञ्चभिः शतघ्नीस्वनैस्तव तत्र सुस्थोपस्थितिम् । यावदहमेतानत्रैव प्रतिरुणध्मि ।

शिवराज—(चारों ओर देखकर) वीर,

विस्तृत आकाश चारों ओर घन मण्डल से आच्छन्न हो उठा (घबड़ाहट से सोचकर) निश्चित ही यह मेरा पीछा करते हुए शत्रुओं के पादाघात से उठी धूल से धूसरित हो रहा है ।२

इसलिए हम लोग प्राप्त समय का लाभ शीघ्र उठायें ।

बाजी—देव, उतावला होने की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि—

आपका यह दास हाथ मे तलवार लेकर अल्प संख्यक सैनिकों के, ही सहारे शत्रुदल का नाश करते हुए शीघ्र ही उनका बढ़ना रोक देगा, इस प्रकार बाधायुक्त मार्ग मे मेरे स्थित रहते भय कहाँ ।३

(दूर देखकर, भ्रम मे) देव, शीघ्रता करें, शीघ्रता करें । यवनों का दल आ पहुँचा । दुर्ग मे पहुँचकर आप पाँच तोपों के स्वर से अपनी सुस्थिति की सूचना दें । मैं तब तक इन सब को इसी स्थान पर रोकता हूँ ।

शिवराज—वीर, त्वामशरणमेवमुत्सृज्य कथमुत्सहे पदमपि पुरतः प्रक्रमितुम्।

बाजी—देव नायमवसरो युक्तायुक्त विचारस्य।

त्वदन्नपानादिविवर्धितोऽयं, भस्मीभवेच्चेदयने तवैव।
तदास्य धर्मास्थिविनिर्मितस्य, देहस्य मन्ये कृतकृत्यतां पराम् ॥४

शिवराज—धन्योऽसि मे भृत्यवीर। रक्षतु त्वां परदेवता।

मार्गरक्षक — इत इतो देव। (उभौ सत्वरं परिक्रामतः)

शिवराज—(स्वगतम्) वस्तुतः

राष्ट्रभक्तिप्रवणं प्रगल्भं, सत्त्वोच्छ्रितं चैव रणप्रवीरं।
उपासित सद्य उपैति भूमिप, स्वातन्त्र्यदेव्याः प्रणयस्य पात्रताम् ॥५

शिवराज—वीर, तुम्हें असहाय, एकाकी छोड़कर एक कदम भी मैं आगे कैसे जा सकता हूँ।

बाजी—देव, इस समय उचित—अनुचित सोचने का अवसर नहीं है।

धर्म और अस्थि से बना यह शरीर जो आप के अन्न एवं पानादि से पालित—पोषित हुआ है, यदि आपके जीवन के ही लिए भस्म हो जाय तो इसे अत्यधिक कृतकृत्य मानूँगा ॥४

शिवराज—वीरश्रेष्ठ, तुम धन्य हो। परमशक्ति तुम्हारी रक्षा करे।

मार्गरक्षक—इधर, इधर से देव! (दोनों शीघ्रता से चलते हैं)

शिवराज—(स्वगत) वस्तुतः

जिसके पास राष्ट्रभक्त, साहसी, बलशाली, युद्धभूमि में पराक्रमी सेवक हों, वह नरेश शीघ्र ही स्वातन्त्र्य देवी का प्रिय पात्र बन जाता है ॥५

मङ्गलरक्षक :—एतद्दुर्गपालाधिष्ठितं विशालगडदुर्गस्य सिंहद्वारम् ।

(पटोक्षेप)

(ततः प्रविशति सिंहद्वारावस्थितो दुर्गपालः)

दुर्गपाल :—स्वागतं देवस्य ।

शिवराज :—प्रथमं तावत्सूचयास्मदुपस्थितिं पञ्चभिः शतघ्नीविस्फूर्जितैः ।

दुर्गपाल :—तथा । (इति यथादिष्टं कुरुते)

शिवराज :—(वामबाहुस्पन्दनं सूचयित्वा) अरे कोऽयं वैकृतागमः ।

तृणाय मत्वा निजजीवितं कृतं, प्राणान्तकष्टे मम येन रक्षणम् ।
वृकावृतस्येव गजस्य तस्य मे, भद्रं मनः संशयमेव गाहते ॥६

सैनिकः (प्रविश्य) (ससंभ्रमम्) देव हतो बाजीप्रभुः ।

मंगलरक्षक—यह दुर्गपाल से रक्षित विशालगडदुर्ग का सिंहद्वार है ।

(पट-परिवर्तन)

(उसके बाद सिंहद्वार पर स्थित दुर्गपाल का प्रवेश)

दुर्गपाल—देव का स्वागत है ।

शिवराज—सबसे पहले पाँच तोपों की ध्वनि द्वारा मेरी उपस्थिति की सूचना दे दो ।

दुर्गपाल—जो आज्ञा ।

(आदेशानुसार करता है)

शिवराज—(बायाँ बाहु फड़कने की सूचना देते हुए) अरे यह अपशकुन क्यों ?

भद्र, मेरा हृदय अभी भी शंका ही में है—जो वृकों (भेड़ियों) से घिरे हाथी के समान है, और जिसने अपने जीवन को तृणवत् मानकर, मेरे प्राणसंकट पर रक्षा में तत्पर है, रक्षित रह सकेगा ।६

सैनिक—(प्रवेशकर, घबड़ाहट में) देव, बाजी प्रभु मारे गये ।

शिवराज :—(निःश्वस्य) हा हतास्मः । (सरोषम्) रे पाप सिद्दिहतक कोऽयमपचारः

एकाकिन समरवीरमिमं समेतैर्व्यापाद्य सैनिकगणैः ननु विक्रमस्ते ।

प्रिय सूर्यकवीर,

आत्मार्पणेन तव पालयतो निजेशं,शुभ्रं यशस्तु परितो विततं त्रिलोक्याम् ॥७

अरे विस्तरेण श्रोतुमिच्छामि ।

सैनिक :—देवस्य प्रस्थानानन्तरं समन्ततोऽभिपततोऽराति निवहान् खण्डशः कृत्वा पञ्चविंशतिक्षतनिःसृतरक्तरञ्जितगात्रेण प्रवीरेण रक्षितो दुर्गारोहमार्गः । तदानीमसौ

आकृष्टभीषणकृपाणकरालपाणि—
च्छिन्नोत्तमाङ्गरिपुसैन्यकबन्धकीर्णम् ।
मार्गं विधाय सहसा समरप्रवीर—
श्चण्डप्रकोपहुतभुग्ज्वलितो विरेजे ॥८

शिवराज—(निःश्वास लेकर) हम नष्ट हो गये । (क्रोध से) अरे, पापी सिद्दी, यह कैसा वध ?

अपने सैनिकों की सहायता से एक अकेले इस रणवीर को मारकर कौन-सा पराक्रम किया ?

प्रियवीर ! अपने आपको समर्पित कर अपने स्वामी की रक्षा करने वाले तुम्हारा धवल यश तीनों लोकों में बिखर गया ।७

ओह, मैं विस्तार से जानना चाहता हूं ।

सैनिक—देव के प्रस्थानोपरान्त चारों ओर से घेरे हुए शत्रु दल को खण्ड-खण्ड करके, पचीस घावों के कारण शरीर से प्रवाहित रक्त वाले उस वीर ने दुर्ग के प्रवेश द्वार की रक्षा की । उसी समय वह

भीषण कृपाण खींचे हुए करालपाणि से शत्रु-सैनिकों के सिर काट, उनके कबन्धों से मार्ग को व्याप्त कर वह समरवीर, सहसा प्रज्वलित प्रचण्ड अग्नि की ज्वाला के समान प्रकाशित हुआ ।८

शिवराज :—(स्वगतम्) अहो क्षत्रवीर एव लोकोत्तरविक्रमेण त्वयाद्य रक्षितं धर्मराज्यम् ।

सैनिक :—एवं पराहते रिपुदले पापेन शिद्दीहलकेन शतघ्नीगोलकविद्धः स देवस्य कुशलोपस्थितिसूचकशतघ्नीस्वन एव दत्तावधानः स्वामिचिन्तापरो भूमौ निपपात ।

शिवराज :—(सरोषम्) आः पाप कूटाभियोगनिरतपशुद्र, अचिरेणैव स्वामद्रोह दुरितफलभागिनं करिष्यति शिवराज ।

सैनिक :—ततश्च समाकर्ण्य संकेतित शतघ्नीस्वनं-'अहो सफलः स्वामिनियोगः । भगवति देहि मे शरणम्-इति सहसोवीर्यं स प्राणानजहात् ।

शिवराज :—(निःश्वस्य) क्षत्रकवीर, विरला हि त्वादृशाः स्वामिभक्ताः ।

शिवराज—(स्वय) अहो, क्षात्रवीर, इस प्रकार अनुपम पराक्रम से तुमने आज धर्मराज्य की रक्षा की ।

सैनिक—इस प्रकार शत्रुदल के हत होने पर पापी शिद्दी ने तोप की गोली से उन पर घात कर दिया, तब वह देव की उपस्थिति-सूचक तोप की ध्वनि की ही ओर ध्यान लगाये स्वामी की चिन्ता में व्याकुल भूमि पर गिर पड़े ।

शिवराज—(सक्रोध) ओह पापी, क्षुद्र, अपने शत्रु के साथ कूट नीति का प्रयोग (धोखा) करते लज्जा नहीं आयी तुम्हें ? शीघ्र ही शिवराज तुम्हें इस दुष्कृत्य का फलभागी बनायेगा ।

सैनिक—उसके बाद शतघ्नी का स्वर सुनकर-'अहो स्वामी के प्रति कर्तव्य पूरा हुआ । भगवती मुझे शरण दो', कहते हुए प्राणों को छोड़ दिया ।

शिवराज—(निःश्वास छोड़कर) श्रेष्ठ क्षत्रियवीर, तुम्हारे समान स्वामिभक्त विरले ही हैं ।

प्रारब्धकर्मवशगाः क्रमशो विकारान्,
सर्वेऽनुभूय ननु कालवशं प्रयान्ति ।
नूनं स एव निजदेश नरेशभक्तो ;
धन्योऽस्ति यस्य निधनं ज्वलितं यशोभिः ॥९

अये दुर्गपाल भवतु राजोपचारेण मम वीरस्यान्त्यक्रिया । अद्यैवाहं तस्य राजभक्तस्य सप्तपुत्रान् नगराङ्गरक्षकपदे नियुञ्जे ।

चर :—(प्रविश्य) विजयतां देव । सम्प्रति देवं दुर्जेयं मत्वा परावृत्तः ससैन्यः सिद्दीहतकः ।

शिवराज :—भद्र त्वं तावद्यवनेशमुपेत्यावेक्षस्व तस्य भाविचिकीर्षितम् ।

चर :—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

गूढचर :—(प्रविश्य) विजयतां देव ।

सभी मनुष्य अपने भाग्य के अनुसार क्रमशः कर्म के वशीभूत, क्षीण होकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं । सचमुच वह धन्य है जिसने अपने देश और नरेश की सेवा में जीवन उत्सर्ग कर दिया, जिसकी मृत्यु भी यश से प्रकाशित होती है ।९

दुर्गपाल, राजोपयुक्त ढंग से मेरे वीर की अन्त्येष्टि क्रिया हो । मैं आज ही उस राजभक्त के सातों पुत्रों को नगररक्षक के पद पर नियुक्त करता हूँ ।

चर—(प्रवेश कर) विजय हो देव । देव सम्प्रति देव को दुर्जेय मानकर सेना-सहित सिद्दी फिर गया है ।

शिवराज—भद्र, तुम यवनराज के पास पहुँचकर उसकी भविष्य की योजनाओं का ज्ञान प्राप्त करो ।

चर—जो आज्ञा । (निकल जाता है)

गूढचर—(प्रवेश कर) देव, विजय हो ।

शिवराजः—कथं प्रचलति दिल्लीशासनम्।

गूढचरः—देव महानस्ति तत्र विपर्यासः।

न्यायानुवर्तिनमसौ स्वगुरुं निगृह्य,
राज्याधिरोहणमवाप्तविवेकतत्त्वः।
नाशङ्क्य विश्वसिति नैव निजे परे वा;
संबाधते प्रकृतिमात्तमहोग्रदण्डः ॥१०

संप्रति तदादेशानुरोधेनोद्यतो दक्षिणापथाधिपश्चाकणदुर्गोपरोधाय।

शिवराजः—पुनरपि ज्ञायतां तस्य प्रवृत्तिः।

गूढचरः—तथा। (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—दुर्गपाल, प्रवर्त्यतामस्मच्छासनमधिकृतेषु यदुपस्थिते प्राणसंकटे जनपदं विहाय तैर्दुर्गं समाश्रयणीया महता प्रयत्नेन च ते

शिवराज—दिल्लीपति का प्रशासन किस प्रकार चल रहा है।

गूढचर—देव, बहुत परिवर्तन आ गया है।

न्यायपथ का अनुसरण करने वाले अपने पिता को बन्दी बनाकर राज्यसिंहासन पर आरूढ हो, राजमद से विवेकहीन होकर वह अपने और पराये किसी भी व्यक्ति में विश्वास नहीं रखता एवं अपनी उद्दण्डता के कारण प्रजा को पीड़ित करता रहता है ।।१०

इस समय उसके आदेशानुसार दक्षिण प्रदेश का अधिपति चाकण दुर्ग पर आक्रमण करने के लिए तैयार है।

शिवराज—पुनः उसकी प्रवृत्ति का ज्ञान करो।

गूढचर—जो आज्ञा। (चला जाता है)

शिवराज—दुर्गपाल, हमारे शासनाधिकारियों को सूचित कर दो कि वे प्राणसंकट की स्थिति होने पर जनपद को छोड़ दुर्गों में आश्रय ले लें और पूर्ण प्रयत्न के साथ उसकी रक्षा करें। और मंत्री को

रक्षणीया इति । तथा चाविश्यतां मंत्री यदवया नौसाधनेन स्वायत्तो कर्तव्यो जंजीराद्वीप इति । तथैव सेनापतिनाप्याक्रमणीया अरक्षिता मोगलप्रदेशा इति । अल्पीयसा कालेनोपैष्यामो वयं सिंहगडदुर्गं तत्रैव प्रेषणीयानि निवेदनपत्राणीति ।

दुर्गपाल :—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराज :—मम बाणप्रसरेण पराहतमपि पुनरस्मान् परिबाधेत यवनसैन्यम् ।

अङ्गरक्षक :—देव, सन्निहितो वर्षा समय । तदुपस्थितमपि यवनसैन्य स्वयमेव परावर्तिष्यते ।

शिवराज :—(परितो विलोक्य) एवमेतद् । यत एते

लुलितपथिकनेत्रं पूरयित्वा रजोभि-
र्वसनमपहरन्तो लुण्ठकाश्चक्रवाताः ।
जनपदपुरमार्गे संभ्रमन्तो यथेष्टं
दिवमभि घनभीता उत्पतन्ते समन्तात् ॥११

आदेश करो कि नौसेना के सहारे जंजीरा द्वीप को अपने अधिकार मे कर लें । उसी प्रकार अरक्षित मुगलप्रदेशों पर सेनापति को आक्रमण कर देना चाहिए । अल्पसमय के पश्चात् ही हम सिंहगढदुर्ग को प्रस्थान कर देंगे, वहीं सारी सूचनाएं प्रेषित करें ।

दुर्गपाल—जैसी आज्ञा देव । (चला जाता है)

शिवराज—बाणश्रेणी वीर द्वारा पराहत होने पर भी यवन सेना हमें पुन. कष्ट पहुँचा सकती है ।

अंगरक्षक—देव, वर्षाकाल निकट है । इसलिए उपस्थित यवनसेना स्वयं ही वापस हो जायगी ।

शिवराज—(चारों ओर देखकर) ठीक कहते हो । क्योंकि ये ग्राम और नगरों के मार्ग में वायु का बवण्डर (तेज हवा) स्वेच्छापूर्वक विचरण करता बादलों से भयभीत-सा चारों ओर से उठकर आकाश की ओर प्रयाण कर रहा है, और इस प्रकार ये बवण्डर एक लुटेरे के समान धान्य पथिक की आँखों में धूल झोंककर उसके वस्त्रों का अपहरण कर रहे हैं ॥११

(ऊर्ध्व विलोक्य) अहो गगनमध्यमारोहति भगवानहर्पतिः ।
तत्साधयामः सभागृहं राजकार्याण्यवेक्षितुम् ।

(इति सपरिजनो निष्क्रान्तः)

समाप्तोऽयमात्मसमर्पणनामा

पञ्चमोऽङ्कः



(ऊपर देखकर) भगवान् सूर्य गगन के मध्य में पहुँच रहे हैं ।
राजकार्यों के निरीक्षणार्थ सभा-भवन में चलूँ ।

(सेवकों के साथ जाते हैं)

आत्मसमर्पण नामक

पाँचवाँ अंक समाप्त



षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशन्ति सिंहगड्दुर्गप्रासादावस्थिता मन्त्रिणः)

नेताजी :—(सहर्षम्) अभिनन्दयते प्रधान मन्त्रिपदमधिरूढ आर्यमिश्र ।

मन्त्री :—वीर महानेषोऽनुग्रह कृतवेदिनो महाराजस्य । परन्तु, भोगप्रसक्तस्य महत्पदावाप्ति—

भोगप्रसक्तस्य महत्पदाप्तिर्यथात्मतोषाय न मे तथेयम् ।
देवेन साक्षात् परिचारकर्मणि नियुक्त इत्येव मम प्रमोदः ॥१

नेताजी :—पुण्यवतामेव खलु महत्सपर्यासौभाग्यम् ।

मन्त्री :—अपि गृहीता अरक्षिता मोगलप्रदेशाः ।

छठवाँ अंक

(उसके पश्चात् सिंहगड्दुर्ग में स्थित मंत्रियों का प्रवेश)

नेताजी—(प्रसन्नता से) प्रधान मन्त्री पद पर आसीन होने के उपलक्ष्य में हम आपका स्वागत करते हैं।

मन्त्री—वीर, यह तो आभारी महाराज की महती कृपा है। परन्तु

उच्च पद की प्राप्ति से जैसा सन्तोष भोग आदि में लिप्त व्यक्ति के लिए होता है उस प्रकार का हर्ष और आत्म सन्तोष मेरे लिए नहीं है, देव की साक्षात् सेवा करने का अवसर मिलेगा, बस यही मुझे प्रसन्नता है ॥१

नेताजी—महापुरुषों की सेवा का सौभाग्य पुण्यवानों को ही मिलता है।

मन्त्री—क्या अरक्षित मुगलप्रदेशों को अधिकार में किया ?

नेताजी —अथ किम् । ततश्च संगृहीतो लक्षत्रयपरिमाणो राजांशोऽद्यैव मया कोशाध्यक्षाय समर्पितः ।

मन्त्री —दिष्ट्या प्रतिदिनमेधते महाराजस्य कोशदण्डज प्रभाव ।

एसाजी —तथापि नास्ति देवस्य विश्रामावसर । एकतस्तातादेशमनुरुध्य बीजापुरेशेन सन्धानमस्य पुनरन्यत समुपस्थितो मोगलेशेन सह विग्रह ।

मन्त्री :—वीर, लोक संग्रहार्थमाविर्भूतानामीश्वराणां स्वभावसिद्ध प्रवृत्तिप्रकर्ष । पश्य

नित्य प्रकाशयति लोकमिम विवस्वा—
नाप्याययत्युपचित सुधया मृगाङ्क ।
सप्तग्रहास्त्वविरत परितो भ्रमन्ति,
जानाति नैव विरति महतां प्रवृत्ति ॥२

नेताजी—हाँ । इसके अतिरिक्त लगभग तीन लाख की धनराशि कर रूप में एकत्र करके आज ही मैंने कोशाध्यक्ष को दिया है ।

मन्त्री—भाग्य से महाराज का कोश और सैन्य बल प्रतिदिन बढ़ रहा है ।

एसाजी—फिर भी देव को विश्राम का अवसर नहीं है । एक ओर पिता के आदेशानुसार बीजापुर नरेश से संधि किया है, दूसरी ओर मुगलसम्राट् से युद्ध करने की तैयारी कर रहे हैं ।

मन्त्री—वीर, संसार के हितार्थ जन्म लेने वाले महापुरुषों में स्वभाव से ही हमेशा विकासशील प्रवृत्ति होती है । देखो—

सूर्य सदा ही इस संसार को प्रकाशित करता रहता है, चन्द्रमा अमृतवर्षा से जगत को सुख-शान्ति पहुँचाता है, सप्तग्रह बिना विश्राम किये चारों ओर विचरते हैं, महान् पुरुषों की प्रवृति ही विश्राम करने वाली नहीं होती ।२

(नेपथ्ये) इत इतो देवः। (आकर्ण्य) अहो अत्रैवोपसर्पति राजकार्यव्याकुलो देवः।

(ततः प्रविशति शिवराजः)

मन्त्रिणः :—(उत्थाय) स्वागतं देवस्य।

(सर्वे शिवराजमनूपविशन्ति)

शिवराजः —पुनरपि प्रत्यासन्नो विग्रहः।

विरोधे विश्रान्ते प्रबलयवनेशस्य परितो,
नवोऽयं सम्प्राप्तस्तदधिकबलीविग्रहविधिः।
पतन्त्येते नित्यं विमितिमिरान्धा रिपुगणाः;
पतङ्गत्वं प्राप्ताः समरसमुदर्चिष्यु सहे॥२

मन्त्री—देव, समादृतोऽस्त्यचिरेण मदोद्धतेन मोगलेशेन परंपरागतराज्यशासनव्यतिक्रमः। अनेन पुनरकाण्डोपनतो भविष्यति मोगलसाम्राज्यविध्वंसः। यतः

(नेपथ्य में) इधर, इधर ने देव। (सुनकर) अहो, राजकार्य से व्याकुल देव इधर (यहाँ ही) आ रहे हैं।

(शिवराज का प्रवेश)

मन्त्रिगण—(उठकर) देव का स्वागत है।

(शिवराज के पश्चात् सभी बैठते हैं)

शिवराज—मन्त्रिगण, फिर युद्ध सन्निकट है।

शक्तिशाली बीजापुर नरेश और हमारा विरोध चारों ओर से सर्वथा समाप्त हो चला, यह नया युद्ध उससे अधिक प्रबल मुगलसम्राट् से उपस्थित हो गया। ये हमारे शत्रु क्यों पतिंग के समान युद्ध रूपी प्रज्वलित अग्नि में अन्धे होकर गिर रहे हैं।२

मन्त्री—देव, मुगलराज ने अभिमान में चूर होकर परम्परागत शासन-व्यवस्था में शीघ्र ही परिवर्तन कर दिया है। इससे अचानक मुगल-साम्राज्य का नाश हो जायगा। क्योंकि—

सत्योद्रेकालसन्तोऽप्युदितनयगुणा न्यायमार्गप्रवृत्ता,
यान्त्युत्कर्षं नरेन्द्राः प्रकृतिहितपरा मण्डलं प्रीणयन्तः ।
अन्ये त्वेतद्विमोहाद् व्यसनपरवशा विद्विषन्तो मदान्धा ;
प्रत्यासन्नावसानाः प्रकृतिविमृषिता आशु नाश व्रजन्ति ॥४

शिवराज :—सत्यं प्रकृतिनिबन्धनैव राष्ट्रसमृद्धिः ।

द्वारपाल :—(प्रविश्य) विजयतां देव. । दिल्लीनगरात् सम्प्राप्तः कोऽपि यवनतापसो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराज :—प्रवेशयैनम् ।

द्वारपाल .—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

यवनतापस .—(प्रविश्य) विजयतां महाराजः ।

शिवराज :—अस्ति काचित् सविशेषा प्रवृत्तिर्मोगलेशस्य ।

शक्तिसम्पन्न, राजनीति-कुशल, न्यायमार्ग पर चलने वाले राजा सभी उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं जब वे अपनी प्रजा के हित का ध्यान और मण्डल को सन्तुष्ट रखते हैं । इसके प्रतिकूल वे राजा जो व्यसनो मे पडकर मोहवश अभिमान के कारण उनसे द्रोह करते हैं, वे सदा नाश के समीप रहते हैं । और प्रजा के विद्रोह से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ।४

शिवराज—यह सत्य है—राष्ट्र की समृद्धि उसकी प्रजा पर निर्भर होती है ।

द्वारपाल—(प्रवेश कर) विजय हो देव । दिल्ली नगर से कोई यवनतपस्वी आकर द्वार पर स्थित है ।

शिवराज—उस ले आओ ।

द्वारपाल—जैसी आज्ञा । (निकल जाता है)

यवनतापस—(प्रवेश कर) महाराज की विजय हो ।

शिवराज—मुगलसम्राट् की किसी विशेष योजना का समाचार है ।

यवनतापस :—देव विपर्यस्त सर्वं मोगलेशतन्त्रम् ।

न मन्यते मन्त्रिकृतार्थनिर्णयं क्षत्रेश्वराणां कुरुतेऽवधीरणाम् ।
विद्वेष्टि सामन्तगणं त्वकारणं ; स्वच्छन्दचारेण चरत्यधीश्वरः ॥५

अतो राज्यलोभाकृष्टेमानेन समन्तात् प्रवर्तितो रणोद्यमः ।
अत्रान्तरे तस्य श्रवणपथमुपगतो बीजापुर सेनापतिवधोदन्तः ।
तदेतत्

श्रुत्वा तव प्रसभमाक्रमणं विपक्षे,
त्रस्तो व्युदस्यति स भोगविलासलौल्यम् ।
आक्रोशति स्वजनमुज्झितं हतौजा,
आशङ्कतेऽभिपतनं तव विक्लवश्च ॥६

यवनतापस—देव, मुगल-सम्राट् की समस्त शासन नीति में परिवर्तन हो गया है।

मन्त्रियों द्वारा किया गया निर्णय नहीं माना जाता, क्षत्रिय राजाओं का अपमान किया जाता है, सामन्त सरदारों से अकारण ही विद्वेष रखता है, इस प्रकार सम्राट् स्वतन्त्र, अपनी इच्छानुसार आचरण करता है।५

इसलिए राज्य के लोभ से उन्होंने चारों ओर से युद्ध प्रारम्भ किया है। इसी बीच बीजापुर के सेनापति का वध समाचार उसे सुनायी पड़ा। अत

शत्रु पर आपके प्रबल आक्रमण का समाचार सुनकर, भयभीत हो वह भोग-विलास का लोभ छोड़ चुका है अपने ही पक्षवालों को वह कायर होने के कारण कोसता है और हतबुद्धि होकर, आपके अचानक आक्रमण के भय से काँप रहा है।६

अतस्तेनादिष्टो दक्षिणापथाधिपो यत्कथमपि निगृह्यानेतव्यः स सह्यमूषक इति। तदाज्ञानुरोधेनापरिमितबलसमेतः स पुण्यनगरमधिष्ठायास्मदाक्रमणमुपकल्पयते। सम्प्रति च सपरिवारः स नर्तकीभिर्विलासिनो महाराजस्य प्रासाद एव निवसति।

शिवराज —अन्यत्रो युद्धे प्रवृत्तेष्वस्मास्वनेन धूर्तेन प्रधर्षिताऽस्मद्राजधानी। इदानीमयं कामुकः

देवाग्निविप्रार्चनमन्त्रपूतं, पूर्वं यदासीन्मम राजमन्दिरम्।
करेणुकाभिर्वनराजगह्वरं, करीव स मे मलिनीकरोति ॥७

तदद्य तं प्रदर्शयिष्यामि मम नयपाटवम्।

मन्त्री—देव सम्यक् प्रयुक्ता अप्यस्मिन् कोशबलसमृद्धे कुण्ठीभविष्यन्ति सामादयश्चत्वार उपायाः। तत्पञ्चमोपायमन्तरेण नास्ति किमप्यन्यत् प्रतिविधानम्। यतः

इस लिए उसने दक्षिण के राज्यपाल को आदेश दिया है कि वह किसी प्रकार उस सह्य पर्वत के चूहे को पकड़कर लाये। उसकी आज्ञा के अनुसार वह अपार सेना के साथ पूना नगर में बैठकर आक्रमण करने की योजना बना रहा है। इस समय वह आपके महल में ही अपने सबकी के साथ नर्तकियों की कला का आनन्द ले रहा है।

शिवराज—हमारे अन्यत्र युद्ध में व्यस्त रहने के कारण इस धूर्त ने हमारी राजधानी पर आक्रमण कर दिया। अब यह कामुक—

मेरे उस राज मन्दिर को जो ब्राह्मणों द्वारा उच्चारित वेदमंत्रों और देवाग्नि से पवित्र था, उस प्रकार दूषित कर रहा है जैसे सिंह की मांद को हथिनियों के साथ हाथी मलिन करता है।७

तो आज मैं उसको अपनी नीति कौशल दिखाऊँगा।

मन्त्री—देव, कोश और बल से समृद्ध शत्रु के सामने साम, दाम आदि चारों उपाय भली भाँति प्रयोग करने पर भी व्यर्थ हो जायेंगे। इसलिए पञ्चम उपाय के अतिरिक्त अन्य कोई युक्ति नहीं है। क्योंकि

एकान्तेनैवाप्रधर्ष्यं बलाढ्यं, दुःसधानं चान्तिके वर्तमानम् ।
यत्नेनैव विद्विषन्तं निगृह्य, स्वात्मानं वै रक्षयेन्नीतिदक्षः ।८

अपि च सेनान्यधीनैव सर्वा समरप्रवृत्तिः । यतः

यात्रासने व्यूहविधानमाक्रमं परावरोधं समरावतारम् ।
युद्धे प्रवृत्तिं विरतिं ततः पुनर्नेता स्ववीर्यानुगुणं चिकीर्षति ।।९

तन्नेतृवधेन विरतो भविष्यति रणोद्यमः परिरक्षितास्च भविष्यन्त्युभयतः सैनिकानां प्राणाः ।

शिवराजः—तदद्यैव वरयात्रिकच्छद्मना प्रविश्य पुनानगरमासादयिष्ये मोगल सेनानायकम् ।

भीष्मद्रोणादयः पूर्वं सेनान्यः पाण्डुनन्दनैः ।
छलेनैव हता युद्धे श्रीपतेरनुशासनात् ।।१०

नीति कुशल राजा को चाहिए कि वह सैन्यबल से युक्त अनतिक्रमणीय, जो सन्धि के योग्य न हो, समीप उपस्थित, शत्रु को अपनी रक्षा करते हुए यत्न से वश मे करे ।८

और भी, युद्ध की सारी क्रियाएँ सेनानायक के अधीन होती हैं। क्योंकि

युद्ध के लिए प्रस्थान, व्यूहरचना आक्रमण, शत्रु को रोकना, युद्धारम्भ, युद्ध मे रत होना, अथवा उससे विमुख होना आदि समस्त क्रियाएँ सेना नायक अपनी सैन्य शक्ति के अनुसार निर्दिष्ट करता है ।९

अतः नेता के वध से युद्ध की क्रियाएँ समाप्त हो जायेंगी और दोनों पक्षो के सैनिकों के प्राणों की भी रक्षा होगी ।

शिवराज—तो आज ही वरयात्रा (बारात) के सदस्य के रूप में छल से पूना नगर में प्रवेश कर मुगल सेनापति को आक्रान्त करूँगा ।

पूर्व समय में पाण्डवों द्वारा श्री कृष्ण के निर्देश से छल द्वारा ही भीष्म, द्रोण आदि सेनापति मारे गये थे ।१०

(चर प्रति) भद्र उच्यतां मद्वचनाद्यवनसेनानियुक्तो महाराष्ट्रीयो गुल्माध्यक्षो यदद्यैवाऽद्यैव विवाहयात्रार्थं संपादनीयं मोगलसेनापतेरनुज्ञापत्रम् । तत्रच्छद्मवेषधरा वयं भविष्यामस्तेऽनुयात्रिका इति ।

यवनतापस :—यदाज्ञापयति देव । (इति निष्क्रान्त)

शिवराज :—अस्मिन् साहसोपक्रमे केवल पञ्चविंशतिसंनिकस॰ मेतावमात्यपदातिनायकौ भवतां मम पार्श्ववर्तिनौ ।

उभौ—देव सज्जौ स्वः ।

शिवराज :—सेनापते त्वं तावत्संनाह्य शतघ्नीविभागम् ।

नेताजी :—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्त)

मन्त्री—अत्रावशिष्यते देवस्य प्रत्यागमनप्रत्यूह निवारणाय कापि विशिष्टा प्रयुक्ति । तद् देवस्य परावृत्तिसमये गृहीतसंकेताः कतिपय सैनिकाः प्रज्वालयन्तु 'काब्रजबर्मनि' समुन्नतपादपविटपाग्रेषु

(दूत से) भद्र, मेरे कथनानुसार यवनसेना में नियुक्त मराठा सेनापति से कहो कि आज ही मुगल-सेनापति से विवाह यात्रा के लिए अनुमतिपत्र प्राप्त करें । उसमें छद्मवेषधारी हम लोग बाराती रहेंगे ।

यवनतापस—जो देव की आज्ञा । (चला जाता है)

शिवराज—इस साहसिक कार्य में केवल पचीस सैनिकों के साथ अमात्य और पैदल सेना के अध्यक्ष मेरे साथ रहें ।

दोनों—हम लोग तैयार हैं देव ।

शिवराज—सेनापति, तोपखाना को तुम तैयार कर लो ।

नेताजी—जो आज्ञा देव । (निकल जाता है)

मन्त्री—देव के निर्विघ्न वापस आने के लिए कोई विशिष्ट युक्ति सोचनी शेष है । अतः देव के लौटने के समय संकेत पाकर, सैनिकों में से कुछ 'काब्रज' के मार्गों में वृक्ष की शाखाओं के अग्र भाग तथा बड़े-

महोक्षशृङ्गेषु च निबद्धां स्तैलकर्पटान्। अनेन भ्रान्ता मोगलसैनिकास्त-त्रैवानुधावेयुः ।

शिवराज :—अहो सुविभाविलोऽयं छलप्रबन्ध । एवं भविष्यति सर्वेषां पुनरत्र सुखोपस्थितिः। तद्भवता प्रयाणाभिमुखौ मे प्रियसहायौ। यावदहमम्बामामन्त्र्य प्रस्थान प्रवणो भवेयम्।

समाप्तोऽयं छलप्रबन्धनामा

षष्ठोऽङ्कः



बड़े बैलों की सींगों पर तेल और कपड़ों की ज्वालाएँ प्रज्वलित कर दें। इससे मुगल सैनिक भ्रम में पड़कर उधर ही दौड़ेंगे।

शिवराज—अहो, यह कपट-युक्ति अच्छी सोची गयी। इस प्रकार सभी सुखपूर्वक यहाँ वापस आ जायेंगे। तो मेरे प्रिय सहायको प्रस्थान के लिए तैयार हो जाओ। इस बीच मैं माता जी से मिलकर प्रस्थान-हेतु तैयार हो जाता हूँ।

छल प्रबन्ध नामक

छठवाँ अंक समाप्त



सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशतो मोगलसेनामुख्याध्यक्षौ)

प्रथमः—भद्र सेनाधिपते कोऽयमसाधारणः सार्वभौमस्य पक्षपातो येनासौ स्वाम्यधिकारानपि स्वयं स्वातन्त्र्येणोपभुङ्क्ते ।

द्वितीयः—अये किं न जानासि प्राग्वृत्तम् ।

प्रथमः—स्वामिनियोगानुरोधेनाद्यैवाहं गान्धारेभ्योऽत्र समासः ।

द्वितीयः—तच्छृणु सावधानः । पूर्वं दक्षिणपथाधिपत्ये स्थापितस्य सार्वभौममातुलस्य प्रासादे गाढान्धकारावृतायां रजन्यां प्रच्छन्नं प्रविश्य शिवराजेनोच्छिन्नास्तस्य भयद्रुतस्य कराङ्गुल्यः । अत्रान्तरे चाकर्ण्य तदाक्रोशं साहाय्यार्थमुपागतस्तदात्मजः शिवराज-

---

सातवाँ अंक

(उसके पश्चात् मुगलसेना के दो सेनापति आते हैं)

प्रथम—भद्र सेनापते, यह तो सम्राट् का बहुत बड़ा पक्षपात है कि (प्रमुख सेनापति) स्वामी के अधिकारों का भी स्वतन्त्रता पूर्वक उपयोग कर रहा है ।

द्वितीय—अरे ! क्या पूर्व वृत्तान्त नहीं जानते हो ?

प्रथम—स्वामी के आदेश से गान्धार गया था आज ही मैं यहाँ आया हूँ ।

प्रथम—फिर सावधान होकर सुनो । सबसे पहले दक्षिण प्रान्त के राज्यपाल, सम्राट् के मामा के महल में रात्रि के घोर अन्धकार में शिवाजी छिपकर घुस गये और भयभीत होकर भागते हुए इसकी अंगुलियों को उसने काट लिया । उसके बाद चिल्लाना सुनकर सहायतार्थ आये हुए उसके पुत्र को शिवराज के अंगरक्षक सैनिक ने

निष्टस्य जयसिंहमहाराजस्य । (ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो परिणतप्रायो हि दिवस । यावत्साधयाम: स्वनियोगपरिपालनाय । (इति निष्क्रान्तौ)

इति विष्कम्भक:

(तत प्रविशति जयसिंहसेनानिवेशमभिप्रस्थितः सपरिजन शिवराज)

जगन्नाथपन्तः—(परितो विलोक्य) देव पश्य,

वक्रा इमे तरुलतास्तबकै: सुगुप्ता,
निम्नोन्नता विकटशाड्वलशैलमार्गाः।
आयाससाध्यकुटिलाक्रमपाटवे नः ,
शिक्षाविशेषमसम वितरन्ति साक्षात् ॥१

वक्रा इति—इमे तरुभि वृक्षैः च लताभि च स्तबकैः च सुगुप्ता आच्छादिता निम्ना च उन्नता च विकटा दुर्गमा च शाड्वला बालतृणावृत च ते शैलस्य गिरे मार्गा च आयासेन प्रयत्नेन साध्य यः कुटिल आक्रम गमन कुटिलानामाक्रम अभियोगो वा तस्मिन् विषये न अस्मभ्यमनुपम शिक्षा विशेष साक्षात् वितरन्ति ।

जयसिंह के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। (ऊपर देखकर) अहो, दिन अब प्राय समाप्त हो रहा है। अत अब अपने कर्तव्य पालन का प्रयास करें। (दोनो चले जाते हैं)

विष्कम्भक समाप्त

(उसके पश्चात् अपने सेवकों सहित शिवराज जयसिंह के सैन्य-शिविर की ओर जाते दिखायी पड़ते हैं।)

जगन्नाथपन्त—(चारो ओर देखकर) देव इधर देखिए,

पर्वत के ये ऊँचे नीचे दुर्गम मार्ग जो वृक्षों, लताओं, कुञ्जों और घासो से ढके रहते हैं प्रयत्न करने पर साध्य हो जाते हैं, इससे हमें शिक्षा प्राप्त होती है कि उपाय द्वारा दुर्गम रास्तों को लाँघा तथा कुटिल शत्रुओं को जीता जा सकता है ॥१

शिवराज :—सत्य शैलोद्देशसञ्चरणपाटवेऽतिवर्तन्ते मोगलसैनिका-नस्मत्सैनिकगणाः । येनाल्पबला अपि वयं प्रबलपरिपन्थिनां पुरतो धर्मराज्यसंस्थापनयशोभागिनः संवृत्ताः ।

जगन्नाथपन्त :—एवमेतत् । अपि च

उच्चावचाचलभुवो गिरिगह्वराणि,
नानालतातरुवराञ्चितकाननानि ।
उत्तुङ्गशैलशिखरस्रुत निर्झराणि ,
दुर्गात्मना तव परस्य च संस्थितानि ॥२

शिवराज :—एतैर्दुर्गप्रवरैरेवाद्यावधि रक्षितमस्मत्स्वातन्त्र्यम् ।

उच्चावचेति—उच्चावचा च या अचलस्य गिरेः भुवः, गिरयश्च गह्वराणि गुहाश्च, नानालताभिः तरुवरैः च अञ्चितानि ललितानि च तानि काननानि वनानि च, उत्तुङ्गेभ्यः शिखरेभ्यः स्रुतानि च तानि निर्झराणि प्रवाहाश्च, एतानि सर्वाणि तव दुर्गात्मना दुर्गरूपेण परस्य च दुर्गात्मना अन्तरायरूपेण स्थितानि ।

शिवराज—सत्य है हमारे सैनिक पर्वतीय मार्ग पर चलने में मुगलसैनिकों से श्रेष्ठ हैं । यही कारण है जो हम अल्पशक्ति से भी प्रबल शत्रु के सामने धर्मराज्य की स्थापना में समर्थ हो रहे हैं ।

जगन्नाथपन्त—ऐसा ही है । और भी,

पर्वत की ऊँची, नीची धरती, पर्वत की गुफाएँ, नाना प्रकार की लताओं और वृक्षों से सुशोभित वन, पर्वत के उच्च शिखर से प्रवाहित होने वाले निर्झर, ये सभी आपके लिए सुदृढ़ दुर्ग के रूप में और शत्रु के लिए बाधा स्वरूप स्थित हैं ।२

शिवराज—इन्हीं श्रेष्ठ दुर्गों से आज तक हमारी स्वतन्त्रता की रक्षा होती रही । परन्तु भाग्य के परिवर्तन से हम उन्हें खो देने के लिए

परंतु कालमहिम्ना संप्रति तानेयानुतोकर्तुं यय प्रयुत्ता । तथाप्यनुकूले दैवे पुनस्त एव भविष्यन्त्यस्मत्स्वातन्त्र्य सहाया ।

जगन्नाथपन्त —तत्र क संदेह । सर्वत्रैव सान्तरायोऽस्ति प्रकृष्ट फलाधिगम । परतु कर्तव्यनिष्ठाया अविच्युताना भवन्ति सर्वेऽपि परिणामसुखोदया उपक्रमा ।

शिवराज —भद्र, कय कियद्दूर वर्तते मोगलसेनानिवेशः ।

जगन्नाथपन्त —देव, पश्यंतेऽस्मत्तुरंगमा ,

समक्रम्य गुप्तान् विषमाद्रिमार्गानुत्तीर्य विस्तीर्ण जलप्रवाहान् ।
प्रवातवेगेन समुत्पतन्त , प्राप्ता क्षणेनोच्छ्रितशैलवप्रम् ॥३ —

शिवराजः—उपागता वय तावत् पुरन्दर परिसरप्रदेशम् । (दूरं विलोक्य सविस्मयम् अहो किं नामैतत्) पश्य,

---

प्रस्तुत हो गये है । फिर भी भाग्य के अनुकूल होने पर पुन वे हमारे लिए स्वतन्त्रता प्राप्त करने मे सहायक होंगे ।

जगन्नाथपन्त—इसमे क्या सन्देह । उत्कृष्ट लक्ष्य की पूर्ति में सर्वत्र बाधाएँ होती ही हैं । परन्तु कर्तव्यनिष्ठा से न हटनेवाले के लिए सभी प्रयास सुखदायक परिणाम वाले होते हैं ।

शिवराज—भद्र, अब मुगल सेना का शिविर कितनी दूर है ।

जगन्नाथपन्त—देव, हमारे इन घोडो को देखिए,

पर्वत के विषम और गुप्त मार्गों को पारकर, बडे-बडे जलप्रवाहों (नदियो को) लाँघकर, वायु की गति से उडते हुए क्षण मात्र मे, उच्च पर्वत पर पहुँच गये ।३

शिवराज—तव हमलोग पुरन्दर के निकट प्रदेश मे आ गये । (दूर देखकर, आश्चर्य से) अहो, यह क्या है । देखो,

आच्छाद्येवोष्णरश्मि निजघनततिभिर्ध्वान्तमापादयद्भि-
र्हृन्मर्मोद्भेदिनादै- स्तनितपटहजैर्गर्वमाघोषयद्भिः ।
धारासम्पातभग्न प्रतिभटविटपिव्याकुलोपत्यकान्त
आक्रान्तो म्लेच्छसैन्यैर्जलधरनिवहै दुर्गराजः समन्तात् ॥४

जगन्नाथपन्त —देव, अवरुद्ध इव लक्ष्यते पुरन्दरदुर्गो मोगलसैनिकैः ।

आच्छाद्येति—निजघनततिभिरुष्णरश्मि सूर्यं पक्षे दुर्गपाल मुरार-
बाजीबीरमाच्छाद्येव ध्वान्तमन्धकारमापादयद्भिः कुर्वद्भिः स्तनितानि
एव पटहा तेभ्य जातैः पक्षे स्तनितानि इव पटहा तेभ्य जातैः हृद-
हृदयस्य मर्माणि भिन्दन्ति तादृशै नादैः गर्वमाघोषयद्भिः धारासम्पातै-
आसारैः पक्षे असिधारासम्पातैः भग्ना ये प्रतिभटा एव विटपिन वृक्षा
तैः व्याकुल व्यग्र उपत्यकान्त उपत्यकाप्रदेश यस्य स दुर्गराजः
पुरन्दरदुर्ग म्लेच्छसैन्यरूपः जलधरनिवहैः पक्षे जलधरनिवहरूपै-
म्लेच्छसैन्य समन्तात् आक्रान्त ।

शिवराज—अरे किमिद द्वैधप्रचरणत्व यवनसेनापतेः। यदेकतः सधानतन्त्रमुपन्यस्यत्यन्यतोऽसौ विग्रहमनुजानाति।

जगन्नाथपन्त—देव कथ नु सभाव्यत एतत्क्षत्रप्रवीरस्य जयसिंहस्य। किन्त्वधोरित सेनापति निदेशस्य मोगलपदातिनायकस्य स्यादेतदनार्य चेष्टितम्। यत,

राज्ञां प्रिया बहुमता व्यसने सहाया,
विस्रम्भभूमय इमे परिपार्श्वगाश्च।
संतर्ज्य शासनमपि स्वपतेर्मदान्धा,
क्षुद्रा अरण्यवृषवद्विचरन्त्यतन्त्रा ॥५

शिवराज—(अश्ववेग निरुप्य) एष कोऽपि क्षत्रियसादी सवेगमित एवाभिवर्तते।

शिवराज—अरे, यवनसेनापति की दुरगी नीति कैसी ? कि एक ओर से सन्धि करने का प्रस्ताव रखता है और दूसरी ओर से यह युद्ध के उपक्रम करता है।

जगन्नाथपन्त—देव, क्या यह क्षत्रियवीर जयसिंह की नीति नही हो सकती। किन्तु सेनापति के निदेश के विपरित कदाचित मुगलो की पैदलसेना के नायक ने यह अनुचित प्रयास किया हो। क्योकि,

ऐसे क्षुद्र जन, जो राजा के प्रिय होते हैं, उनके द्वारा विशेष आदर पाते हैं, उनके व्यसनो मे सहायक रहते हैं, उनके विश्वासपात्र और और साथ रहनेवाले होते हैं, अपने स्वामी के शासन को भी अवहेलना कर, मदान्ध-सा होकर कार्य करते हैं, जैसे जगली बैल स्वच्छन्द होकर विचरण करता है।५

शिवराज—(घोडे के वेग का अनुमानकर) यह कोई क्षत्रिय घुड़सवार तेजी से यहाँ आ रहा है।

(ततः प्रविशति क्षत्रियसादी)

सादी—(ससम्भ्रमम्) देव, महदत्याहितम्। मोगलपदातिनायकेनोपजापितोऽपि स्वामिचरणयोरात्मनः परां निष्ठां प्रकटयन् शतशो मोगलसैनिकान्निहत्य वीरगतिं प्रपन्नः पुरन्दरदुर्गपालः।

शिवराज—हा कष्टम्। उपक्रान्तमिव लक्ष्यते दुर्दैवविचेष्टितम्।

सादी—तस्य चालोकसाधारणविक्रमविस्मितेन मोगलनायकेन सवानी सहसंबोधोरितः—'विश्वपतिरेवैतादृशान्वीरभटानुत्पादयितुं प्रभवति—' इति।

शिवराज—अहो, पराभिनन्दितविक्रमस्य निश्चितोऽनन्तलोकजयः। अये गच्छ त्वं पुनरपि पुरन्दरदुर्गम्।

सादी—यथाज्ञापयति देव। (इति निष्क्रान्तः)

(उसके बाद क्षत्रिय अश्वारोही का प्रवेश)

अश्वारोही—(घबडाया हुआ) देव, घोर आपत्ति। मुगलों की पैदलसेना के नायक से मेल करने पर भी, पुरन्दर दुर्ग का पालक, स्वामी के चरणों में परमनिष्ठावान् रहकर सैकड़ों मुगल सैनिकों का वध करके वीरगति को प्राप्त हो गया।

शिवराज—दुःख है। मालूम होता है दुर्भाग्य ने कार्य प्रारम्भ कर दिया।

अश्वारोही—और उसके असाधारण वीरता से आश्चर्य में पड़कर मुगलसेनापति ने उस समय अचानक कहा—'ईश्वर ही ऐसे वीर पैदा कर सकता है।'

शिवराज—अहो, शत्रु द्वारा जिसकी वीरता की प्रशंसा की गयी निश्चित ही वह संसार विजयी बना। अच्छा तुम अब पुरन्दर दुर्ग जाओ।

अश्वारोही—जैसी आज्ञा देव। (चला जाता है)

शिवराज—भद्र, नास्त्यवकाशो विलम्बस्य। (इति सर्वेऽश्वान्नोदयन्ति)

(ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेणाश्वारूढ उदयसिंह)

उदयसिंह—सह्येश्वर, तिष्ठ तावन्मुहूर्तम्।

शिवराज—(अश्वनिगृह्य) अहो उदयसिंह। अप्यनामयं महाराजस्य

उदयसिंह—यथाकिम्। अपि च सदिष्टमस्ति देवेन यद्भवादेशानुवर्तननिष्ठापुरस्सरं यदि तथागमन स्यात्तदा सुखेनागन्तव्यम्। अन्यथा इत एव विनिवर्तनीयम्—इति।

शिवराज—सर्वथा मान्य एवास्माकं क्षत्रकुलनायकस्यादेश। तत्तावदुपेमो महाराजस्य शिविरम्। (सर्वेऽश्वान्नोदयन्ति)

शिवराज—भद्र, अब देर करने के लिए समय नहीं है। (सभी घोडों को हांकते हैं)।

(तभी अचानक परदा हटाकर घोडे पर सवार उदयसिंह का प्रवेश)

उदयसिंह—सह्यराज, क्षणभर के लिए रुकें।

शिवराज—(घोडे को मोड़कर) अहो, उदयसिंह। महाराज कुशल है न?

उदयसिंह—जी हाँ। परन्तु यह निर्देश किया है कि आप यदि उनके आदेश का पालन करें तो प्रसन्नतापूर्वक मिल सकते हैं अन्यथा यहीं से लौट जायें।

शिवराज—क्षत्रियकुलनायक का आदेश हमारे लिए सर्वथा मान्य है। इस लिए महाराज के शिविर की ओर चलें। (सभी घोडों को हाँकते हैं।)

उदयसिंह —सह्येश्वर, प्रत्यासन्नोऽस्मत्सेनानिवेश । तदश्वादवरुह्य प्रविशाम । (इति सर्वेऽवरोहन्ति)

(पटीक्षेप.)

(तत· प्रविशत्युपकार्यावस्थित· सपरिवारो जयसिंहो रघुनाथपन्तश्च)

रघुनाथपन्त —(दूर विलोक्य) एष उपस्थितोऽस्मत्स्वामी शिवराज· । यावत्तं प्रत्युद्गच्छामि । (इत्युपसर्प्य) स्वागतं देवस्य । (इत्यभिनन्दति) प्रविशतु देव· सपरिवारो महाराजोपकार्याम् । (इति सपरिवारं शिवराजं प्रवेशयति)

जयसिंह —(अभ्युत्थाय) स्वागतं सह्येश्वरस्य । (इति हस्तयो· गृहीत्वा) ममैवार्धासनमधिष्ठातुमर्हति सह्येश्वर । (इति स्वपार्श्वे शिवराजमुपवेशयति)

शिवराज —महानेषोऽनुग्रह क्षत्रकुलमण्डनस्य ।

उदयसिंह—सह्येश्वर, हमारा सैन्य-शिविर निकट है । इसलिए घोड़े से उतरकर चलें । (सभी घोड़े से उतरते हैं)

(परदा गिरता है)

(उसके बाद अपने सेवकों और रघुनाथपन्त के सहित जयसिंह राज-शिविर में बैठे दिखायी पड़ते हैं)

रघुनाथपन्त—(दूर देखकर) हमारे स्वामी शिवराज यह आ रहे हैं । चलकर उनका स्वागत करूँ । (पहुँचकर) स्वागत है देव । (प्रणाम करता है) सेवकों-सहित महाराज के शिविर में प्रवेश करें । (सेवकों-सहित शिवराज को ले जाता है ।)

जयसिंह—(उठकर) सह्येश्वर का स्वागत है । (हाथों से पकड़कर) आइए मेरे अर्धासन पर बैठिए सह्येश्वर । (शिवराज को अपने बगल बैठाता है ।)

शिवराज—क्षत्रियकुल भूषण का यह महान् अनुग्रह है ।

जयसिंह.—अप्यनामयं क्षत्रियवीरस्य ।

शिवराज—राजन् संधानप्रवणेऽपि मयि कथं क्षत्रपरिमर्दान्न विरमत्येष पदातिनायकः ।

जयसिंह :—सार्वभौमस्य बहुमानेनावलिप्तोऽयं त्वया स्वयमेवोपेत्य सान्त्वयितव्यः । एष प्रवीरतरो मम पितृव्यः सुभानसिंहो भविष्यति तव सहायः । तस्मादभूतपूर्वतोऽप्यत्र तवानिष्टाशङ्कावकाशः । सम्प्रति प्रेषयाम्यहमुदयसिंहं युद्धविष्टम्भाय ।

शिवराज :—राजन्, त्वदीयस्नेहपरिगृहीतोऽहं सर्वथा प्रतिपद्ये तव हितोपदेशम् ।

जयसिंह :—पूर्वं तावद्विधीयतां स्वनाममुद्राङ्कितमेतत्सन्धिपत्रम् । (इत्यर्पयति)

शिवराज :—(वाचयति)

जयसिंह—क्षत्रियवीर का कुशल है न ?

शिवराज—राजन्, यह पैदल सेना का नायक क्षत्रियों के मर्दन से विश्राम क्यों नहीं लेता जबकि मैं शान्ति रखना चाहता हूँ ।

जयसिंह—सम्राट् द्वारा विशेष आदर पाने के कारण यह उद्धत हो गया है तुम स्वयं उसके पास जाकर शान्त करो । वीरश्रेष्ठ मेरे चाचा ये सुभान सिंह तुम्हारे सहायक रहेंगे । अतः अपने अनिष्ट की तनिक भी शंका न करें । सम्प्रति उदयसिंह को युद्ध रोकने के लिए भेजता हूँ ।

शिवराज—राजन्, तुम्हारे स्नेह से अनुगृहीत तुम्हारी सलाह सर्वथा मानता हूँ ।

जयसिंह—पहले इस सन्धि पत्र को अपने हस्ताक्षर और मुद्रा से पूर्ण करो (देता है ।)

शिवराज—(पढ़ता है)

श्रीमद्भारतराजकुलाधीश्वरसार्वभौममोगलेशचरणरचिताञ्जलिः शिवराज

१. स्वकीयांस्त्रयोविंशति दुर्गांश्चत्वारिंशल्लक्षाशवहांश्च जनपदान् सार्वभौमस्य स्वाधीनानापादयति। स्वयं चावशिष्टान् द्वादशदुर्गांश्चतुर्लक्षाशवहांश्च जनपदान् सार्वभौमशासनमनुरुध्यानुशास्ति।

२ स्वकुमारं च सार्वभौमसेनायां पञ्चसहस्रसादिनामधिकारपदे स्थापयति।

३ स्वयं च सार्वभौमशुश्रूषायां सर्वदा सादरो वर्तते।

४. स्वयं च सन्निहितराज्ययोश्चतुर्थांशसंग्रहाधिकारं सार्वभौमाज्ञयोपभुनक्ति।

(इति। स्वनामसमुद्राङ्कितविधाय) उररीक्रियते मयैतत्संधिपत्रम्। (इत्यर्पयति)

भारतवर्ष के राजकुलों के सम्राट् सार्वभौम सम्राट् मुगलेश के चरणों में शिवराज करबद्ध प्रणाम करते हुए।

१ अपने तेईस दुर्गों और चालीस लाख के आय वाले जनपदों को सार्वभौम सम्राट् के अधीन करता है। और स्वयं शेष बारह दुर्गों तथा चार लाख की सम्पत्ति वाले जनपदों पर सम्राट् के अधीन रहकर शासन करता है।

२. अपने कुमार को सम्राट् की सेना में पाँच हजार अश्वारोहियों के अधिकार पद पर नियुक्त करता है।

३. और स्वयं सार्वभौम की सेवा के लिए सदा तैयार है।

४. और स्वयं सार्वभौम की आज्ञा से दो पड़ोसी राज्यों से चतुर्थांश संग्रह का अधिकार रखता है। (हस्ताक्षरित और मुद्राङ्कित करके) इस संधिपत्र की शर्तें स्वीकार करता हूँ।

जयसिंह —सहोदर परं प्रीणयसि मां तव सौजन्यातिशयेन। उदयसिंह, उच्यतां मद्वचनात्पदातिनायको यद्युद्धव्यवसायतस्त्वंसद्यो विरमेति।

उदयसिंह —यथाज्ञापयति देव। (इति निष्क्रान्त)

प्रतिहार —(प्रविश्य) विजयतां देव। एष सार्वभौमस्य सन्देशहर कोऽपि दूतो द्वारितिष्ठति।

जयसिंह —प्रवेशयैनम्।

प्रतिहार —यदाज्ञापयति देव। (इति निष्क्रान्त)

दूत —(प्रविश्य) विजयतां महाराज।

जयसिंह —अप्यनामयं सार्वभौमस्य।

दूत —अथ किम्। प्रेषितमेतद्राजशासनं महार्हवस्त्राभूषणपुरःसरं सार्वभौमेण शरणमुपागते शिवराजे वितरितुम्। (इति राजशासनादीन्यर्पयति)

जयसिंह—सहोदर, तुम्हारी सौजन्यता से हम अत्यन्त सन्तुष्ट हैं। उदयसिंह, मेरे आदेशानुसार पैदल सेना के नायक को युद्ध सम्बन्धी सभी कार्य बन्द करने के लिए कहो।

उदयसिंह—जैसी आज्ञा देव। (चला जाता है)

प्रतिहार—(प्रवेशकर) विजय हो देव। सार्वभौम का सन्देशवाहक कोई दूत द्वार पर उपस्थित है।

जयसिंह—ले आओ उसे।

प्रतिहार—जो आज्ञा देव। (चला जाता है)

दूत—(प्रवेशकर) विजय हो महाराज।

जयसिंह—सार्वभौम कुशल है न?

दूत—जी हाँ। सार्वभौम ने बहुमूल्य वस्त्राभूषण शरणागत शिवराज को देने के लिए यह राजाज्ञा भेजी है। (राजाज्ञा आदि देता है)

जयसिंह :—(सविस्मय स्वगतम्) अहो भवितव्यता । (वाचयित्वा) सह्येश्वर, दिष्ट्याऽनवलोकितमप्यभिनन्दते संधिपत्रं सार्वभौमेण बहुमन्यसे च [illegible] महार्होपचारैः ।

शिवराज :—राजनीतिदक्षे महाराजे मन्त्रिसेनापतिपदाधिरूढे सहैवोपक्रमेणार्थसिद्धिः सार्वभौमस्य ।

जयसिंह :—क कोऽत्र भोः ।

प्रतीहार :—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देव ।

जयसिंह :—आराधयन्तु सगीतेन सह्येश्वरं नर्तक्यो यावदहमेनं समावर्जयामि महार्होपचारैः ।

प्रतीहार :—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

जयसिंह :—वत्स शिवराज उत्तिष्ठ । (इति वस्त्रादीनि परिधापयति)

नर्तक्य :—(प्रविश्य) विजयतां महाराज । (इति सगीतमारभन्ते)

जयसिंह—(आश्चर्य से पढ़कर स्वयं) अहो, भाग्य ! (पढ़कर) सह्येश्वर, भाग्य से बिना देखे ही सार्वभौम ने सन्धिपत्र स्वीकार कर लिया और बहुमूल्य उपहारों से तुमको आदर दिया है।

शिवराज—राजनीति में कुशल महाराज के मन्त्री और सेनापति पद पर नियुक्त रहने से सार्वभौम क्रमानुसार हर कार्य में सफल होते हैं।

जयसिंह—कौन, कोई है ?

प्रतिहार—(प्रवेशकर) आज्ञा देव !

जयसिंह—सह्येश्वर, का नर्तकियों के संगीत से मनोरंजन करायें, मैं राजकीय उपहार प्रदान करता हूँ ।

प्रतिहार—ठीक है । (चला जाता है)

जयसिंह—वत्स, शिवराज उठो । (वस्त्र आदि पहिनाता है ।)

नर्तकियाँ—(प्रवेशकर) विजय हो महाराज । (संगीत प्रारम्भ करती हैं)

(विहागरागेण तेवरातालेन गीयते)

सुमनसुकुमार नयनविहार ॥

हृदयधार यौवनसार । प्रणयापार पारावार ॥ सुम०॥१

जलदश्यामधर सुखधाम । कुसुमललामचम्पकदाम ॥सुम०॥२

अयि भुवनेश मानववेश । रमय रमेश मां रसिकेश ॥सुम०॥३

जयसिंह :—अनया चम्पकमालया सुबद्धं भवतु ते हृदयं मोगल-साम्राज्येन। (इति मालामर्पयति)

शिवराज —राजन् भवादृशैर्भारतवीराग्रसरैः क्षुण्ण एव पन्था अस्माकं परमं शरणम्।

जयसिंह —अल्पीयसा कालेन नूनं भविष्यति तव सार्वभौमसमागमसौभाग्यम्। तत्र च करिष्यति ममात्मजो रामसिंहस्तवसाहाय्यम्। तदामीं तवालोकसाधारणविक्रमपरितुष्टो मोगलेशो नियोजयिष्यति त्वां दक्षिणापथाधिपाये।

(विहागराग तेवराताल से गाया जाता है)

हे, कुसुम सुकुमार, आँखों को सुख देने वाले हृदय के आधार-यौवन के सर्वस्व, प्रेम के समुद्र ।१ बादल के समान श्याम वर्ण वाले, सुखधाम, चम्पक पुष्पों की यह सुन्दर माला ।२ मनुष्य रूपधारी हे भुवनेश धारण करो और हे रसिकों में श्रेष्ठ रमेश (भगवन्) मुझे साथ में विहार का सुख दो ।।३

जयसिंह—इस चम्पकमाला की सहायता से तुम्हारा हृदय मुगल साम्राज्य से आबद्ध हो जाय। (माला पहिनाता है)

शिवराज—राजन् आप सदृश भारतवर्ष के वीराग्रणी द्वारा अपनाया मार्ग ही हमारे लिए शरण है।

जयसिंह—कुछ ही समय में तुमको सार्वभौम के समागम का सौभाग्य निश्चित रूप से प्राप्त होगा। वहाँ मेरा पुत्र रामसिंह तुम्हारा सहायक होगा। तब तुम्हारे असाधारण विक्रम से सन्तुष्ट मुगल सम्राट् तुम्हें दक्षिण प्रदेश का राज्यपाल नियुक्त करेंगे।

शिवराज —महाराजस्य वचसि वर्तमानस्य ममोत्तरोत्तरमुत्कर्ष एव ।

जयसिंह —क्षत्रप्रवीर, त्वादृशानां विक्रमशालिना साहाय्येन समीहते सार्वभौम साम्राज्यप्रभावम् समेधयितुम् ।

शिवराज —भवादृशे क्षत्रेश्वरे समृद्धे साम्राज्ये का गणना मम साहाय्यस्य । किंतु महाराजस्य प्रसादात् सार्वभौमसपर्याप्रसङ्गोदयेनात्मानमहं कृतिनं मन्ये ।

जयसिंह :—(ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो, उपक्रान्तो निशीथसमयः । कः कोऽत्र भो ।

प्रतिहार —(प्रविश्य) आज्ञापयतु देव ।

जयसिंह —अन्तर्गृहमार्गमादेशय (शिवराज प्रति) एहि सह्येश्वर ।

प्रतिहार :—इत इतो देव । (सर्वे परिक्रामन्ति)

शिवराज—महाराज की सलाह में रहने पर मेरा उत्तरोत्तर उत्कर्ष ही होगा ।

जयसिंह—क्षत्रियवीर, तुम सदृश पराक्रमी की सहायता से सार्वभौम साम्राज्य का प्रभाव बढ़ाना चाहते हैं ।

शिवराज—आप सदृश क्षत्रिय श्रेष्ठ द्वारा समृद्ध साम्राज्य में मेरे साहाय्य की कौन गिनती है । किन्तु महाराज की कृपा से सार्वभौम की सेवा का अवसर प्राप्त करके मैं स्वयं को भाग्यशाली मानता हूँ ।

जयसिंह—(ऊपर देखकर) अहो, रात्रि काल व्यतीत हो रहा है । कौन है ।

प्रतिहार—(प्रवेशकर) आज्ञा देव ।

जयसिंह—अन्तर्गृह का मार्ग दिखाओ । (शिवराज से) आओ सह्येश्वर ।

प्रतिहार—इधर-इधर से देव । (सभी घूमकर चलते हैं)

शिवराज :—(स्वगतम्) अहो कथमद्यापि साशङ्कमेव मे मनो मोगलाधीश्वरे । यद्

आजन्मनो जनमिमं द्विषताऽधमेन, साम्राज्यवैभवमदोद्धतमानसेन
स्वातन्त्र्यमन्यनृपतेरसहिष्णुनामे, संमाननं किमु कृत प्रविलोभनार्थं

प्रतिहार :—एतदन्तर्गृहद्वार प्रविशतु देवः सह्येश्वरश्च । (निष्क्रान्त.)

जयसिंह :—(प्रविश्य सुवर्णमञ्चावधिरुह्य) क्षत्रवीर तव सामं धारप्रपणतयाऽत्यन्तोष सन्तुष्टोऽस्मि ।

शिवराज :—राजन्, अस्थानेऽपि शङ्काकुलं मे मनो मा मुखरय मरकथमलोक साधारण विक्रमा साक्षाद्विजयमूर्तयो भवादृशा सानन्दमङ्गीकुर्वन्ति मोगलसेवानुगत्वम् ।

शिवराज—(स्वय) अहो, क्या कारण है कि आज भी मेरा हृदय मुगल सम्राट् से शकित हो है । जैसे,

यह जो जन्म जन्म से मेरा शत्रु है, जिसका हृदय साम्राज्य के वैभव से उन्मत्त है और जो अन्य राजाओं की स्वतन्त्रता सहन नहीं करता, उसने मेरा इस प्रकार सम्मान क्यो किया, केवल लालच दिखाने के लिये ।६

प्रतिहार—यह अन्तर्गृह का द्वार है, देव और सह्येश्वर प्रवेश करं । (चला जाता है)

जयसिंह—(प्रवेशकर, स्वर्णमंच पर बैठकर) क्षत्रियवीर तुम्हारे इस समव्यवहार से मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ ।

शिवराज—राजन् अकारण यह क्यो मेरा मन शकित होकर जानना चाहता है कि अतिलोक पराक्रमवाले, साक्षात् विजय की मूर्ति सदृश आप भी मुगल सम्राट् की सेवा सानन्द स्वीकार कर रहे हैं ।

जयसिंह :—वत्स कालचक्रपरवशा हि सर्वे प्राणिनः । सम्प्रति हीनगुणानां क्षत्राधिपानां गुणोत्कर्षेणारूढप्रतापस्य मोगलान्वयस्य सपर्यामन्तरेण न विद्यतेऽन्यदालम्बनम् । तद्यावदेते न भवन्त्यन्तराया अस्मद्धर्मानुष्ठानेषु तावत्समानमोया । तथापि साम्प्रतं सम्राट्पदमारूढेन मोगलेशेन परधर्मविद्वेष परणोप्तमेव साम्राज्यविध्वंसबीजम् । अहो बत यद्भावि तत्केन निवार्यते । पूर्वं सम्राडनुग्रहपरंपरावशीकृतैरस्माभिस्तु कृतज्ञतयाऽनुष्ठीयते भृत्यधर्मः ।

शिवराज :—राजन्, अन्यथा खलु मे प्रत्यय । यतः

स्वामिनं तु निजधर्मविच्युतं, सेवकः परिहरन्न दोषभाक् ।
अग्रज हि परदारलोलुपं त्यक्तवान् गुणनिधिर्विभीषण ॥७

जयसिंह :—अहो, क्षत्रवीर एवं धर्मतत्वव्याख्यानेन व्यामोहयसीव

जयसिंह—वत्स, सभी प्राणी कालचक्र के अधीन हैं। सम्प्रति गुण हीन हुए क्षत्रिय नरेशों के लिए, गुणोत्कर्ष के कारण प्रतापशाली हो गये मुगलों की सेवा के अतिरिक्त अन्य कोई सहारा नहीं है। अतः जब तक कि ये हमारे धर्मानुष्ठान में हस्तक्षेप नहीं करते, समान्य हैं। फिर भी मुगल सम्राट् ने अन्य धर्मों के साथ द्वेष करने के कारण साम्राज्य के विनाश के बीज बो दिया है। अहो, भाग्य कौन बदल सकता है। पूर्व सम्राटों के अनुग्रह के कारण कृतज्ञ हम अपना सेवक धर्म निभा रहे हैं।

शिवराज—राजन्, मैं विपरीत समझता हूँ। क्योंकि

अपने धर्म पथ से विचलित हुये स्वामी को यदि सेवक त्याग देता है तो वह दोषभागी नहीं है। गुणों से युक्त विभीषण ने अपने बड़े भाई को जो पर स्त्री लोलुप था, त्याग दिया था।७

जयसिंह—अहो, क्षत्रियवीर, इस प्रकार धर्मतत्व की व्याख्या से

मे मनोधाम् । तथाप्यस्माकं तु पूर्वोपहृत एव वर्त्मनि संसर्गिकः पक्षपातः । (ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो निशोपकल्पा हि रजनी । यावद्रात्रिकृत्यानि परिसमाप्य शयनमारोहाव. ।

(इति निष्क्रान्तौ)

(पटीक्षेप.)

समाप्तोऽयं भोगलेश्यानुसंधाननामा

सप्तमोऽङ्कः



तुम मेरे हृदय को भ्रम मे डाल रहे हैं । तथापि मैं पूर्व से अपनाए हुए मार्ग में रहने का ही पक्षपाती हूँ । (ऊपर देखकर) अहो, अर्द्ध रात्रि आ गयी । रात्रि के कार्य समाप्त करके चलो शयन करें ।

(दोनों चले जाते हैं)

(परदा गिरता है)

भोगलेश्यानुसंधान नामक

सातवाँ अंक समाप्त



अष्टमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति निजोपवन प्रासादावस्थितः रामसिंहः)

रामसिंहः :—(स्वगतम्) अहो मानानयमयोगपटुनाऽपि शिवराजेन पितृमयपदावदेनाभिनन्दित मोगलेशानुसन्धानम् । तन्निवेशपर्यन्तो मानेनानिराय स्वमानमादाय च मोगलपदातिनायकं तस्मै समर्पिताः पुरन्दरप्रभृतयो दुर्गप्रवराः । स्थापितश्च निजपुत्ररामो मोगलसेनायाम-धिकारपदे । इत चित्रं च दत्ताऽभयोऽस्मौ मन्त्रिविनिहितराज्यभारः सार्वभौमसमागमार्थमत्र समागतः केवलमौत्सुक्येन कालं यापयति । इतश्च निजमातुलाग्रचन्द्रालिप्तहृदयो मोगलेशः पूर्ववत्तस्मिन् सवि-शेषभावो न लक्ष्यते । निजालयेव मोगलपुरराजवदरसंनि प्रतिनिवेशा

आठवाँ अंक

सभावितस्यास्य तु सामन्तसाधारणोपचारपराऽत्र सत्क्रिया केवल सधुक्षयिष्यति निर्वाणभूयिष्ठं पूर्वं वैरानलम्। अहो धिगिमामनव स्थितिं लोकपालानाम्। यद्

पार्श्वस्थानुचरोपजापमुषिता व्यक्कुर्वते सुव्रतान्,
दुर्वृत्तानपि चाटुवादविजिताः श्लिष्यन्ति प्रेम्णाधमान्।
मिथ्योत्सेकहृता द्विषन्ति च हितान् सतर्जयन्त्यूर्जितान्,
दोलाचञ्चलचित्तवृत्तय इमे स्वाराधनीयाः कथम्॥१

(पुरतो विलोक्य) एष परिसमाप्य प्रसाधन विधिमुपस्थित सहादेवः।

पार्श्वस्थेति—पार्श्वस्थानमनुचराणामुपजापेन तत्कृतभेदनेरर्थं मुषिता अपहृता इमे नराधिपाः सुव्रतान् व्यक्कुर्वते चाटुवाद मिथ्यास्तुतिभिः विजिता वशीकृता दुर्वृत्तानधमानपि प्रेम्णा श्लिष्यन्ति तेषु विश्वसन्तीत्यर्थं। मिथ्या उत्सेकेन गर्वेण हृता हितान् द्विषन्ति ऊर्जितान् बलिनश्च सतर्जयन्ति भत्सयन्ति। दोलावत् चञ्चला चित्तवृत्ति येषा ते इमे तु कथमाराधनीयाः।

साधारण सामन्त के समान स्वागतोपचार होगा तो पहले की शत्रुता द्विगुणित होकर प्रकट हो जायगी। अहो, राजाओं के अस्थिरचित्त को धिक्कार है। क्योंकि

पास रहने वाले अनुचरो की भेदनीति से प्रभावित रहने से य गुणीजनो का अनादर करते, दुराचरण करनेवालो की चाटुकारिता के कारण उन अधमो से अनुराग रखते (विश्वास करते) मिथ्याभिमान के प्रभाव से हितैषियो से द्रोह रखते और बलशाली की निन्दा करते हैं, ऐसे दोला के समान चपल चित्तवृत्तियालों की सेवा करना कठिन है।१

(सामने देखकर) भलीभाँति सज्जित होकर सहादेव उपस्थित हैं।

शिवराज :—(प्रविश्य) दिष्ट्याद्य भविष्यति चिरप्रार्थित. सार्वभौम समागम ।

रामसिंह :—अथ किम् । परंत्वपरिचिताः सन्त्येत मोगलेश्वरा प्राये समुदाचारस्य । तन्महाराजेनोपेक्षणीयस्तेषामाचारातिक्रमः ।

शिवराज :—कुमार, सम्यक् परिचितोऽस्मि यवन समुदाचारस्य।

द्वारपाल :—(प्रविश्य) विजयतां कुमार । जातः खलु सार्वभौमसभोपासनसमय ।

रामसिंह :—साधयामस्तावत् । भद्र आदेशय सार्वभौम प्रासादमार्गम् ।

द्वारपाल :—इतइतो देवौ । (सर्वे परिक्रामन्ति)

शिवराज :—(पुर निर्वर्ण्य) अहो,

शिवराज—(प्रवेशकर) भाग्यवशात् आज बहुत दिनो से अभीष्ट सार्वभौम के दर्शन होंगे ।

रामसिंह—निश्चित परन्तु ये मुगलशासक हमारे सामाजिक व्यवहार से अपरिचित है । इसलिए महाराज उनके व्यवहार की त्रुटियों पर ध्यान न दें ।

शिवराज—कुमार, मैं यवनो के सामाजिक आचाररीति से भलीभांति परिचित हूँ ।

द्वारपाल—(प्रवेशकर) कुमार की विजय हो । सार्वभौम के सभा मे उपस्थित होने का समय हो गया ।

रामसिंह—चलिए फिर । भद्र, सम्राट् के महल का मार्ग दिखाओ ।

द्वारपाल—इधर, इधर से देव । (सभी घूमकर चलते हैं)

शिवराज—(नगर पर दृष्टि डालकर) अहो,

ललित तरुवितानैर्मण्डिता राजमार्गैः,
स्फटिकविमलभासैः सौधवासैः समृद्धा।
यवनजवनयानैः संकुलेयं विशाला;
विविधविपणिपण्या राजते राजधानी ॥२

रामसिंह :—महाराज किं बहुना। साक्षाद् विलासभूमिरेषा विलासिनां मोगलराज कुलेश्वराणाम्।

द्वारपाल :—एते समाप्ता वयं सार्वभौमसभामण्डपद्वारम्। तत्प्रविशतां देवो।

(इति निष्क्रान्त)

(पटीक्षेप.)

ललितेति—ललिताः ये तरवः तेषां वितानानि येषु तैः राजमार्गैः मण्डिता अलङ्कृता स्फटिकस्य विमल. भास. द्युतिः इव भासः येषाः तैः सौधवासैः सुधया निर्मितैः मन्दिरैः समृद्धा यवनाना जवनैः वेगवद्भिः यानैः च सङ्कुला विविधाः विपणयः पण्यानि च यस्यां सा इयं विशाला राजधानी राजते।

सुन्दर वृक्षों के वितान से शोभित राजमार्गों से युक्त, स्फटिक की भाँति श्वेत वर्ण वाले राजप्रासादों से समृद्ध मुगलों के तीव्रगामी रथों विविध बाजारों एवं विक्रेयवस्तुओं से परिपूर्ण यह विशाल राजधानी शोभित है।२

रामसिंह—महाराज बहुत कहने से क्या। विलासप्रिय मुगल-सम्राटों की साक्षात् विलासभूमि है यह।

द्वारपाल—यह हम लोग सार्वभौम के सभा मण्डप-द्वार पर पहुँच गये। अतः प्रवेश करें देव। (चला जाता है)

(परदा गिरता है)

(ततः प्रविशति सभामध्यवर्ती मयूरासनस्थ सार्वभौमः)

वीणिनौ—(वीणावाद्येन गायत)

(कर्णाटरागेण झम्पातालेन गीयते)

लताकुञ्जलीना ।
तृणाङ्के शयाना स्वबाहूपधाना ।
स्वयं धीतमाना प्रिये सावधाना ।
शुचा विह्वला ते नवीना निलीना ॥लता०॥१
पदं ते लपन्ती वियोगे तपन्ती ।
मुखं स्नापयन्ती तनुं म्लापयन्ती ।
रुजा क्षीयते कान्तहीना निलीना ॥लता०॥२
अवस्थानमन्ते प्रियाया वरं ते ।
विलम्बेऽशुभतेऽनुतापो दुरन्ते ।
क्षणं याचते नाथ दीना निलीना ॥लता०॥३

(उसके बाद मयूरासन पर स्थित सभा के मध्य सार्वभौम का प्रवेश)

वीणावादक—(वीणावादन के साथ गाते हैं)

(कर्णाटराग झम्पाताल में गाया जाता है)

(यह राधा की दूती द्वारा कृष्ण के प्रति कही गयी उक्ति है।) दूती कह रही है—हे कृष्ण ! लताओं के कुंज में लीन (बैठी) तृणों की शय्या पर अपने बाहुओं की तकिया लगाये, अपने मान का त्याग कर, अपने प्रियतम में मन को रमाये हुए, नवानुराग में (विरह दुःख में) व्याकुल है।१ तुम्हारे विरह-गीतों का उच्चारण करती, वियोग में जलती आँसुओं से मुख को धोती हुई, (इस प्रकार अपने शरीर को क्षीण करती) अपनी शोभा से हीन हो रही है।२ तुम्हारी प्रिया के समीप तुम्हारा पहुँचना अत्यन्त उचित है, विलम्ब करने पर अशुभ की आशंका है और उसके नष्ट हो जाने पर तुम्हारे लिए पश्चाताप का विषय होगा। हे नाथ वह तुम्हारे क्षणभर के समागम की याचना करती है।३

शिवराज :—(रामसिंहेन सह प्रविश्य संगीतमाकर्ण्य स्वगतम्) अहो, मद्वियोगेन दुरवस्थामनुभवति मम महाराष्ट्रभूमिरिति सूचितमनेन गेयपदेन।

रामसिंह :—(शिवराजेन सह सार्वभौममुपसृत्य) विजयतां सार्वभौम.। एष सार्वभौमादेशानुवर्ती समुपस्थित शिवराजः।

शिवराज :—(त्रिः प्रणम्य) अनुगृहणातु सार्वभौमः, उपहार परिगृहेण। (इति रत्नाद्युपहरति)।

मोगलेश :—(रामसिंह प्रति) जसवन्तसिंहपार्श्वं एनमुपवेशय।

रामसिंह :—यदाज्ञापयति सार्वभौम'। (इति यथाविष्टं कुरुते)

शिवराज —(अपवार्य) कुमार कोऽयं जसवन्तसिंहः।

रामसिंह :—(अपवार्य) एष तु जोधपुराधीश सार्वभौमस्य परमविश्वासभाजनम्।

शिवराज—(रामसिंह के साथ प्रवेश और संगीत सुनकर) अहो, मेरे वियोग से दुरवस्था का अनुभव कर रही है मेरी महाराष्ट्रभूमि, इस गीत से सूचित होता है।

रामसिंह—(शिवराज के साथ सम्राट् के पास पहुँचकर) विजय हो सम्राट्। सम्राट् के आदेश का पालन करनेवाला यह शिवराज उपस्थित है।

शिवराज—(तीन बार प्रणाम कर) उपहार स्वीकार करके अनुगृहीत करें सम्राट्। (रत्न आदि उपहार देता है)

मोगलेश—(रामसिंह से) जसवन्तसिंह के पास इसे बैठाओ।

रामसिंह—जो आज्ञा सम्राट्। (आदेशानुसार करता है)

शिवराज—(अलग) कुमार, कौन है, यह जसवन्तसिंह।

रामसिंह—(अलग) यह जोधपुरनरेश सम्राट् के परम विश्वासी व्यक्ति हैं।

शिवराज —(अपवार्य सरोषम्) आः किमहं मत्सरिणा मोगलेशेनैवमपमानार्थमत्र निमन्त्रित । सन्ति जोधपुरेशातिशायिनस्तु ममापरसामन्ताः । अरे कोऽयमधिक्षेपः ।

रामसिंह —(अपवार्य) प्रसीदतु महाराजः ।

मोगलेश —(अपवार्य) अरे किमसौ जल्पति ।

रामसिंह —(अपवार्य) अपरिचितजनसमर्दं केवलं मर्दःयव घर्मपीडितो वनशार्दूल ।

मोगलेश :—तत्प्रापयैनं स्वनिवेशम् ।

रामसिंह —तथा ।

(इति शिवराजेन सह सभामण्डपाद्बहिर्निर्गत्य परिक्रामति)

शिवराज :—(साक्षेपम्) कुमार,

निमन्त्रितस्यावमतिममेय, किं सार्वभौमेश्वरतानुरूपा ।
क्षुद्रोऽथवा प्राप्य महत्पदं निजं निसर्गसिद्धं न जहाति लाघवम् ।।२

शिवराज—(अलग क्रोध में) आह, क्या मैं दुष्टहृदय ईर्ष्यालु मुगल सम्राट् द्वारा इस अपमान के लिए निमन्त्रित किया गया । जोधपुरनरेश से तो मेरे अन्य सामन्त भी बड़े हैं । ओह, यह कैसा अपमान ।

रामसिंह—(अलग) महाराज शान्त हों ।

मोगलेश—(अलग) अरे, यह क्या कहता है ।

रामसिंह—(अलग) घाम से व्याकुल यह वनराज जनसमूह से अपरिचित होने के कारण गरज रहा है ।

मोगलेश—तो इसे उसके शिविर में भेजो ।

रामसिंह—ठीक है ।

(शिवराज के साथ सभा मण्डप के बाहर निकलकर घूमता है ।)

शिवराज—(व्यग्य से) कुमार, निमन्त्रित करके मुझे अपमानित करना क्या यह सम्राट् के अनुरूप है ? अथवा क्षुद्र जन महान्पद प्राप्त करने पर भी अपनी स्वभाव सुलभ क्षुद्रता नहीं छोड़ते ।२

रामसिंह :—महाराज कस्यापि धूर्तस्येद विचेष्टितमिति तर्कये एते संप्राप्ता वयमस्मन्मन्दिरम् । यावत्प्रविशामः ।

(तत प्रविशन्ति मन्दिरावस्थिता शिवराजं प्रतिपालयन्तो भृत्या.)

भृत्या—(उत्थाय) स्वागत देवस्य ।

शिवराज :—(रामसिंहेन सह प्रविश्य) दुर्दैवनो विफलीभूतोऽस्माकं मनोरथ । (इति सर्वे सहोपविशति)

रामसिंह :—महाराज सद्य एव सिद्धिपथमारोक्ष्यति तव मनोरथ

शिवराज :—(साकूतम्) कुमार दुरवगाह्यो हि दुरात्मना प्रचार. । तद्बहुमानेन प्रतार्य वशीकृता अकुटिल क्षत्रियवरा अने धूर्तेन क्षत्रकुलविनाशायैव इति प्रतीयते । सिद्धे कार्ये स्वेतेषा ताव भौमनिष्ठानां भावि तथाविल शङ्कास्पदमेव ।

रामसिंह .—महाराज मिथ्यैव ते वितर्कः । अचिरेण प्रकरि

रामसिंह—महाराज, मेरी धारणा है, यह किसी धूर्त का क है । यह हमलोग अपने महल को आ गए । चलें प्रवेश करें ।

(उसके पश्चात् शिवराज की प्रतीक्षा करते सेवक मन्दिर दिखायी पड़ते हैं)

सेवकगण—(उठकर) स्वागत, देव ।

शिवराज—(रामसिंह के साथ प्रवेशकर) दुर्भाग्य से हमा मनोरथ विफल हो गया (सबके साथ बैठ जाते हैं)

शिवराज—(सआशय) कुमार, दुष्टो की नीति को जानना य कठिन है । मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि, अत्यन्त आदर, सम्मान सरलमन क्षत्रिय राजाओ को उसने वश मे करके, उन्हें ही क्षत्रि के विनाश हेतु नेता बना दिया है । परन्तु मुझे सन्देह है कि कार्य सि हो जाने पर भी इनकी निष्ठा इसी प्रकार सम्राट् के प्रति रहेगी ।

रामसिंह—महाराज, यह आपकी गलत धारणा है । शीघ्र

मापन्ने सार्वभौम सभाजयिष्यति त्वां यथार्होपचारविशदो । अयमहं सार्वभौममुपेत्य पुनरपि त्वत्समागमार्थं प्रयते । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराज —अहो बत महत् कष्टम् । यद्

नानाविलासविभवैर्वशतामुपेता,
राजन्यपांसव इमे विकृतात्मभावाः ।
त्यक्त्वा निजं सपदि देशकुलाभिमानं,
नष्टाः स्वयं स्वजनमाशु विनाशयन्ति ॥४

रघुनाथपन्त —देव यत्सत्यम्

क्व तुच्छभोगापहृतात्ममाना, स्वधर्ममूढा उदरम्भरीश्वराः ।
क्व राष्ट्रसंस्थापननिश्चितव्रतो, धर्माश्रितो जीवितनिःस्पृहो भवान् ॥५

हीरोजी —(परितोऽविलोक्य ससम्भ्रमम्) हा धिक् । महदत्याहितम् ।

सम्राट् प्रकृति में आने पर आपका सम्मान यथोचित रूप से करेंगे । मैं यह सम्राट् के पास पहुँचकर आपके समागम का प्रयत्न करता हूँ । (चला जाता है ।)

शिवराज—ओह, महान क्लेश का विषय है । कि—

ऐश्वर्य और भोग-विलास की विविध सामग्रियों के वशीभूत ये क्षत्रिय बन्धु आत्मभाव को नष्ट कर, अपने देश, कुल के अभिमान को त्याग दिये हैं और इस प्रकार ये स्वयं को नष्ट करके अपने जातिवालों को नष्ट कर रहे हैं ।४

रघुनाथपन्त—देव, वस्तुतः,

कहाँ तो तुच्छ भोग-विलासों के कारण अपने सम्मान को छोड़कर, स्वधर्म से विमुख उदर भरनेवाले स्वार्थी ये राजा और कहाँ, राष्ट्र की स्थापना के लिए दृढ़प्रतिज्ञ, धर्मनिष्ठ, तदर्थ प्राणों की भी चिन्ता न करनेवाले आप, दोनों की तुलना नहीं है ।५

हीरोजी—(चारों ओर देखकर घबड़ाहट से) धिक्कार है । घोर आपत्ति ।

शिवराज :—(पुरतो विलोक्य) हा बन्दीकृता इमौ विश्वासघातिना मोगलेशहतकेन (समन्ताद्विलोक्य) अहो समन्ततोऽवरुद्धमस्मन्मन्दिरं मोगलसैनिकैः। (निःश्वस्य) नूनं यवनदासस्य जयसिंहस्य वचसि वर्तमानेन मया स्वयमेव निमन्त्रितं प्राणसङ्कटम्।

प्रकृतिसर्गकुटिले वितथप्रतिज्ञे, विश्वासमागमवतो महाविच्युतिर्मे।
मिथ्यावलेपविवशोऽवरमन्त्रहीनः, सत्त्वोच्छ्रितोऽप्यरिवशं सहसा प्रयाति॥६

रघुनाथपन्त —देव, सत्यं विप्रलब्धा वयं जयसिंहेन। यद्

स्वच्छन्दगामी गिरिशाह्वरालयो, हठप्रतापैरपि दुष्प्रधर्ष्यः।
वनेश्वरोऽनेन महाप्रलोभनैरापादितो व्याधशराग्रलक्ष्यताम्॥७

शिवराज—(सामने देखकर) हा, दुष्ट विश्वासघाती मुगल सम्राट् द्वारा हम बन्दी हो गये। (चारों ओर देखकर) अहो, मुगल सैनिकों द्वारा हमारा महल चारों ओर से घिर गया। (निश्वास लेकर) यवनों के दास जयसिंह की बात मानकर मैंने स्वयं यह प्राणसंकट निमन्त्रित किया है।

स्वभावतः कुटिल, असत्यवादी इस सम्राट् पर विश्वास करके मैंने बहुत बड़ी राजनीतिक भूल की है, महान् पराक्रमशील व्यक्ति भी उचित मन्त्रणा से हीन, मिथ्याभिमान के वश में पड़कर सहसा शत्रु के हाथों पड़ जाता है।६

रघुनाथपन्त—देव, सत्यतः हमलोग जयसिंह द्वारा ठगे गये। क्योंकि

इसने स्वेच्छापूर्वक विचरण करनेवाले, पर्वत की गुफाओं के निवासी, महान् पराक्रमों द्वारा भी वश में न आनेवाले वनराज (सिंह शिवराज) को प्रलोभन देकर व्याध के बाणों का लक्ष्य बना दिया।७

मोगलनायक :—(प्रविश्यापटीक्षेपेण) राजन, कुटिलराजपुरुषेभ्यः स्त्वां रक्षितुं समागमान्तरावधि प्रतिसिद्धस्ते स्वतन्त्रसचारः सार्वभौमेण।

शिवराज :—अनुग्रह एव सार्वभौमस्य। तस्यैव भूयोदर्शनार्थं मया व्यवसीयते।

मोगलनायक :—राजन् साधयामि भवानामय निवेदयितुं सार्वभौमाय। (इति निष्क्रान्तः)

रघुनाथपन्त :—नार्हति देव इदानीमात्मानमवसादयितुम्। यतः

कथं प्रपन्नोऽस्मिमितामृदुर्गतिमगाध इत्येव वृथा वितर्कः।
आसाद्य काष्ठं जलधौ विपन्नः प्रकल्पयेत्सतरणाय साधनम् ॥८

तच्छीघ्रमेव चिन्त्यतां कोऽपि दुर्गसतरणोपाय।

शिवराज —सम्यगवधारित मोगलेशस्वभावेन मया प्रागेवोप-

मोगलनायक—(सहसा प्रवेशकर) राजन्, कुटिल राजपुरुषों से आपके रक्षणार्थ, अपने समागम की अवधि तक आपका स्वेच्छापूर्वक विचरण सम्राट् ने निषिद्ध कर दिया था।

शिवराज—यह सम्राट् का अनुग्रह है। मैं पुनः दर्शनार्थ प्रयत्न कर रहा हूं।

मोगलनायक—राजन्, मैं आपकी कुशलता का समाचार सम्राट् को जाकर देता हूँ। (चला जाता है)

रघुनाथपन्त—देव, अब हमें अपना साहस नहीं छोड़ना चाहिए। क्योंकि

अचानक हम यह कैसे इस दुर्गति को प्राप्त हो गये सोचना व्यर्थ है, समुद्र में डूबता हुआ व्यक्ति काष्ठ के सहारे तैरने का प्रयास करता है।८

अतः शीघ्र ही इस विपत्ति से मुक्ति के लिए कोई उपाय सोचिए।

शिवराज—मुगलसम्राट के स्वभाव से परिचित होने के कारण

कल्पितः प्रयाणप्रबन्धः । तच्छृणुत सर्वे सावधानाः । प्रथमं तावद-स्मदागमनोत्सवोपायनमिषेण स्कन्धेनोह्यन्तां मिष्टपदार्थपरिपूर्णा बृहत्करण्डाः प्रतिपरिचितब्रह्मकुलमन्दिरम् । समवलोकितेषु च केषुचित्करण्डेषु नष्टाशङ्का भविष्यन्ति मोगलाधिकृताः । अनन्तरं च निःशङ्कमेकस्मिन् करण्डे साधयिष्यामि साम्प्रतमस्य मम निर्गमम् । भवद्भिश्च सर्वैर्नानामिषैर्निर्गत्यायां प्रयागमार्गान्तराले प्रतिपालनीयौ । एष हीरोजीरामानः रोगाक्रान्तशिवराजरूपापन्नः सानुचरो ग्राम-विप्लवयद्रोधकगणमाप्रदोषागमम् । ततस्तेनाऽपि सानुचरेण संकेत-स्थानमभ्युपगन्तव्यम् । ततश्च नानाछद्मवेषधरा वयं सुखेन प्राप्स्यामो-ऽस्मत्सह्यप्रदेशम् । इति

रघुनाथपन्तः :—देव सम्यगुपकल्पितोऽयं प्रयाणप्रबन्धः । तददे-क्षिप्रमेवाय प्रतिष्ठतामापणमस्मद्भ्यपाल ।

हृदयपाल —तथा । (इति निष्क्रान्तः)

रघुनाथपन्त —अहं तावत्साधयामि रामसिंहमन्दिरम् । (इति निष्क्रान्तः)

मोगलनायक — (प्रविश्य) राजन् निवेदितं भवदनामयं सार्वभौमाय ।

शिवराज —सम्प्रति तु प्रबलोदरशूलपीडितस्य नास्ति मे स्वास्थ्यलेशः । सुखप्रसुप्तस्य तु कदाचिद्भविष्यति मे वेदनानिग्रहः ।

मोगलनायक —अप्युपस्थापयामि राजवैद्यम् ।

शिवराज —यामिनीशेषं सुखशयनेन यदि न निरास्यते मे वेदना-प्रत्यवस्थानमेव भविष्यति राजवैद्येन प्रयोजनम् ।

मोगलनायक —साधु । (इति निष्क्रान्तः)

हृदयपाल —(प्रविश्य) देव क्रीता एते मिष्टान्नपूर्णा पञ्चविंशति करण्डाः ।

हृदयपाल—ठीक जाता (जाता है ।

रघुनाथपन्त—मैं रामसिंह के महल को जाता हूँ । (चला जाता है)

मुगलनायक—(प्रवेश कर) राजन् सम्राट् से आपके सुस्वास्थ्य के विषय में निवेदन कर दिया ।

शिवराज—इस समय प्रबल उदरशूल की पीड़ा से मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है । कदाचित् गाढ़ी निद्रा के बाद पीड़ा कुछ शान्त होगी ।

मुगलनायक—क्या राजवैद्य को बुलाऊँ ।

शिवराज—रातभर गहरी निद्रा में सोने के बाद भी यदि मेरी पीड़ा शान्त न होगी तभी राजवैद्य की आवश्यकता पड़ेगी ।

मुगलनायक—ठीक है । (चला जाता है ।)

हृदयपाल—(प्रवेश कर) देव, मिठाईयों से पूर्ण ये पचीस टोकरियाँ खरीद लीं ।

शिवराज —सर्वे क्रमेणास्मदनुचराधिष्ठितान् मन्द वाहयंतान ।

द्रव्यपाल —तथा । (इति यथोक्त कुरुते)

हीरोजी —(पुरतो विलोक्य) देव, परीक्ष्य पञ्च करण्डान् विरतो मोगलनायक । तदनयो करण्डयोनिलीनौ भवता देव कुमारश्च ।

उभौ—तथा । (इति निलीयते)

हीरोजी —(क्रमेण करण्डान् वाहयित्वा पुरतो विलोक्य) दिष्ट्या कुमारेण सह निर्विघ्न निष्क्रान्तो देव । यावदह छद्मवेषधरो भूत्वा शयनमारोहामि । (इति तथा कुरुते)

मोगलनायक —(प्रविश्य) अपि लक्ष्यते वेदनापकर्ष ।

अनुचर —आर्य इदानीमेव सुप्त प्रवृत्ता बलवदुदरशूलपीडितस्य देवस्य निद्रा । तन्नार्हत्यार्यो वचनमात्रेणापि निद्राभङ्ग विधातुम् । स्वयमेवाहमार्याय निवेदयिष्यामि सुप्तोत्थितस्य तस्य कुशल वृत्तान्तम् ।

शिवराज—क्रम से एक एक करके मेरे अनुचरो द्वारा इनको निकलवाओ ।

द्रव्यपाल—जैसी आज्ञा । (कथनानुसार कार्य करता है)

हीरोजी—(सामने देखकर) देव, पाँच टोकरियो का परीक्षण करके मुगल अधिकारी परीक्षण बन्द कर दिये । इसलिए अब आप और कुमार इन दो टोकरियो मे छिप जायँ ।

दोनो—ठीक है । (छिप जाते हैं)

हीरोजी—(क्रमानुसार टोकरियाँ निकलवा, सामने देखकर) भाग्य से कुमार के साथ निर्विघ्नरूप से देव निकल गए । मैं अब छद्मवश मे शयन करूँ । (उस प्रकार करता है)

मुगलनायक—(प्रवेशकर) क्या पीडा कम हुई ?

अनुचर—अत्यधिक उदरशूल से पीडित देव को अभी ही निद्रा आयी है । अत शब्द मात्र से भी आर्य को निद्रा भग करना उचित नही है । मैं स्वय उनकी कुशलता का समाचार उनके शयनोपरान्त उठने पर आपको दूँगा ।

मोगलनायक —तथा । (इति निष्क्रान्त)

हीरोजी —एतावता कालेन समुल्लङ्घित स्यान्नगरसीमा-तो देवेन । तदावामपि तावत्प्रतिष्ठावहे । (इतिच्छद्मवेष परित्यज्य सानुचरो निष्क्रान्त)

मोगलनायक —(प्रविश्य स्वगतम्) अहो, कथमयमेकाकी गाढ स्वपिति । क्व गता अस्यानुचरा । (प्रकाशम्) क कोऽत्र भो ।

वृद्धसैनिक —(प्रविश्य) आज्ञापयत्वार्य ।

मोगलनायक —अरे पश्य किमेष विगतचेतन इव लक्ष्यते शयनगत शिवराज । न च दृश्यते कोऽप्यस्यानुचर ।

सैनिक —(शयनमुपसृत्य वस्त्राण्युद्धृत्य ससम्भ्रमम्) आर्य क्व शिवराज । एतानि वस्त्र वसनान्येव ।

मोगलनायक —(ससम्भ्रममुत्पन्नतारस्वरेण) हा हता स्म ।

मुगलनायक—ठीक है। (चला जाता है)

हीरोजी—इतने समय में देव नगर की सीमा पार कर चुके होंगे। तो अब हमलोग भी प्रस्थान करें। (छद्मवेश छोड़कर सेवक-सहित जाता है।)

मुगलनायक—(प्रवेशकर स्वगत) अहो, यह अकेले गहरी नींद में क्यों सो रहा है। इसके अनुचर कहाँ गये ? (प्रकट) कौन है ?

वृद्धसैनिक—(प्रवेशकर) आज्ञा आर्य।

मुगलनायक—अरे, देखो शिवराज निष्प्राण-सा शयन स्थान पर प्रतीत होता है ? और उसके कोई सेवक भी नहीं दिखायी पड़ते।

सैनिक—(शयन स्थान तक पहुँच, वस्त्रों को हटाकर, घबराहट से) आर्य शिवराज कहाँ है ? ये तो केवल उसके वस्त्र हैं।

मुगलनायक—(घबड़ाकर, चीत्कार सा तीव्र स्वर में) हा मारे गये।

नेपथ्ये—(आर्य मा भैषी । सन्निहिता: स्म उद्धृतकृपाणा ।

सैनिका (प्रविश्य खड्गान्युद्यम्य) आर्य दर्शय । क्व सन्ति ते प्राणद्रुह ।

मोगलनायक—(सरोषम्) रे वाल्मा, भवन्त एव मे प्राणद्रुह । क्वास्ति शिवराज ।

सैनिका—आर्य, भवेदत्रकुत्रापि प्रच्छन्न । (इति समन्ताद्विचरन्ति)

मोगलनायक—(ससम्भ्रमम्) अरे निपुणमवेक्षध्वम् ।

सैनिक—आर्य न लभ्यतेऽसौ कितव ।

प्रथम—असौ दानवशत्रु स्वमायया तिरोहितो भवेत् ।

द्वितीय—अरे कदाचिद्वियन्मार्गेणोद्गत स्यात् ।

तृतीय—मूढ, भूगर्भमार्गेणैव सम्भवत्यस्य पलायनम् ।

नेपथ्य मे—आर्य, भय न करें । हम लोग तलवार लिए तैयार है ।

सनिकगण—(प्रवेशकर और तलवार निकाले हुए) आर्य दिखाये । आपके प्राणद्रोही कहाँ हैं ।

मुगलनायक—(क्रोध से) अरे, वाचालो, आप सब ही हमारे प्राणद्रोही हैं । शिवराज कहाँ है ?

सैनिकगण—आर्य, यहीं कही छिपे होंगे । (चारों ओर ढूढते हैं)

मुगलनायक—(घबडाहट में) अरे सावधानी से देखो ।

सैनिकगण—आर्य, नही मिलता वह धूर्त ।

प्रथम—वह अपने छल द्वारा दानवशत्रुओ में छिपकर गायब हो गया होगा ।

द्वितीय—अरे, कदाचित् वह आकाशमार्ग से चला गया ।

तृतीय—मूढ, उसका भाग जाना भूगर्भ मार्ग से ही सम्भव है ।

मोगलनायकः—(सरोषम्) अरे अनभिजाताः। नायं वितर्कावसरः। कुतोऽपि निगृह्यानयन्तु तं सार्वभौमबन्दिनं ममसमक्षम्।

(सर्वे पुनरपि मृगयन्ते)

वृद्धसैनिकः—(नायकमुपसृत्य) आर्य वृथाऽयं कोलाहलः। स धूर्तः कथमपि प्रच्छन्नं पलायित इति तु सिद्धम्। तदविलम्बेनैव सार्वभौमं गृहीतार्थं कुर्मः।

मोगलनायकः—तथा। (इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

पटीक्षेपः

समाप्तोऽयं प्रयाणप्रबन्धनामा

अष्टमोऽङ्कः



मुगलनायक—(क्रोध से) अरे नीचो, वितर्क का अवसर नहीं है। कहीं से भी, सम्राट् के उस बन्दी को पकड़कर मेरे सामने ले आओ।

(सभी पुनः ढूढ़ते हैं)

वृद्धसैनिक—(नायक के पास पहुँचकर) आर्य यह कोलाहल व्यर्थ है। वह धूर्त किसी भी प्रकार छिपकर भाग गया, यह सिद्ध है। अतः शीघ्र ही सम्राट् को इसकी सूचना दी जाय।

मुगलनायक—ठीक। (सभी चले जाते है)

(परदा गिरता है)

प्रयाण प्रबन्ध नामक

आठवाँ अंक समाप्त



नवमोऽङ्कः

(तत प्रविशत्यन्तंगृहावस्थिता राजमाता)

राजमाता—(स्वगतम्) श्रुत मया चारेभ्यो यत्प्रतार्य मौगलाधिकृताम् देशाद्देशान्तरं पर्यटन् सम्प्राप्तो वत्स करवीरक्षेत्रम्। तदचिरेणात्र भविष्यति तस्य सुखागमनम्। अत आज्ञप्तो मया प्रधानमन्त्री सह्यदुर्गलङ्घनाय। येनोपस्थिते वत्से शीघ्र संपादितो भवेत्साम्राज्याभिषेकमहोत्सव।

कञ्चुकी (प्रविश्य) एष राजकार्ये व्याकुल प्रधानमन्त्री द्वारि तिष्ठति।

राजमाता—प्रवेशय तम्।

नवाँ अंक

(उसके पश्चात् अन्तर्गृह में स्थित राजमाता का प्रवेश)

राजमाता—(स्वगत) गुप्तचरों से सूचना मिली है कि देश-देशान्तर का भ्रमण कर, मुगल अधिकारियों को धोखा देते हुए मेरा पुत्र करवीर क्षेत्र में पहुँच गया है। इसलिए शीघ्र ही वह सुख-पूर्वक यहाँ आ जायगा। अत. प्रधानमंत्री को मैंने आदेश दिया है कि सह्यदुर्ग पर अधिकार कर लें। जिससे पुत्र के यहाँ आगमन पर शीघ्र ही साम्राज्याभिषेक महोत्सव सम्पन्न हो जाय।

कंचुकी—(प्रवेशकर) राज्य-कार्यों से व्याकुल प्रधानमंत्री द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं।

राजमाता—उसे आने दो।

कञ्चुकी—तथा। (इति निष्क्रान्तः)

प्रधानमन्त्री—(प्रविश्य) अम्ब त्वदादेशानुरोधेन मयात्मसात्कृताः पञ्चषाः सह्यदुर्गाः।

राजमाता—मन्त्रिवर्य, अभिनन्दामि तव युद्धपाटवम्। अपोपलब्धा काप्यभिनवा प्रवृत्तिर्वत्सस्य।

प्रधानमन्त्री—अद्यावधि तु नास्ति श्रुतिगोचरा कापि देवस्याभिनवा प्रवृत्तिः। सम्प्रति सभागृहमुपेत्य जानामि देशान्तरप्रवृत्तिम्। (इति निष्क्रान्तः)

कञ्चुकी—(प्रविश्य) एतेऽत्रभवतीं द्रष्टुकामा यतयो द्वारि तिष्ठन्ति।

राजमाता—प्रवेशय तान्।

कञ्चुकी—तथा। (इति निष्क्रान्त)

कंचुकी—ठीक है। (चला जाता है)

प्रधानमन्त्री—(प्रवेशकर) अम्ब, आपके आदेशानुसार मैंने सह्य मे से पाँच सह्यदुर्गों को अधिकार मे कर लिया है।

राजमाता—मन्त्रिश्रेष्ठ, तुम्हारी युद्धकुशलता सराहनीय है। पुत्र के किसी नये समाचार की कोई सूचना मिली है।

प्रधानमन्त्री—इस समय तक तो देव का कोई नया समाचार नहीं सुनायी पड़ा। सभागृह में चलकर देशान्तर के समाचार मालूम करता हूँ। (चला जाता है।)

कंचुकी—(प्रवेशकर) आपके दर्शन की इच्छा से कुछ साधु द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं।

राजमाता—उन्हें बुलाओ।

कंचुकी—ठीक। (चला जाता है।)

यतयः—(प्रविश्य) वर्धतां प्रार्थितफलाधिगमेन राजमाता।

राजमाता—(सप्रश्रयम्) प्रतिगृहीताशीः। दिष्ट्याद्य पवित्रीकृतोऽयमुद्देशो भगवतां सान्निध्येन। (वामाक्षि स्पन्दनं सूचयित्वा स्वगतम्) *अपि नाम लभेयं मम वत्सस्य प्रवृत्तिम्।*

प्रधानयतिः—अम्ब तीर्थयात्राप्रसङ्गेनानीतं मयाऽभिषेकार्थमेतद्-गङ्गोदकम्।

राजमाता—(प्रधानयतिं निर्वर्ण्य सविस्मयम् स्वगतम्) अहो केनचिदंशेन सवदत्यस्य मुखच्छविमम वत्सस्य मुखच्छविना।

प्रधानयतिः—तद्गृह्यतामेतद्। (*इत्युपसृत्य कलशमर्पयति*)

राजमाता—महानेषोऽनुग्रहः। (इति गृह्णाति) अपि ज्ञायते कापि मम वत्सस्य प्रवृत्तिः।

प्रधानयतिः—अम्ब नातिदूरं वर्तते तवात्मजः। (इति यतिवे

साधुगण—(प्रवेशकर) राजमाता अभीष्टफल की प्राप्ति से सम्पन्न हों।

राजमाता—(विनम्रता पूर्वक) अनुगृहीत हूं। भाग्य से आज यह क्षेत्र आप सबके आगमन से पवित्र हो गया। (बायीं आँख के फड़कने का अनुभव करके स्वयं) क्या पुत्र के कुछ समाचार सुन सकती हूं।

मुख्यसाधु—अम्ब, तीर्थ यात्रा के प्रसंग में मैं यह गंगाजल अभिषेक के निमित्त ले आया हूं।

राजमाता—(प्रधान साधु को भलीभांति देखकर, आश्चर्यचकित हो स्वयं) अहो, इस साधु की मुखाकृति मेरे पुत्र की मुखाकृति से कुछ समानता रखती है।

मुख्यसाधु—इसे ग्रहण कर लें। (पास पहुँचकर कलश देता है)

राजमाता—महान् अनुग्रह है यह। (ग्रहण करती है) क्या पुत्र के विषय में कुछ ज्ञात है।

मुख्यसाधु—अम्ब, आपका पुत्र बहुत दूर नहीं है। (साधुवेश को

पमपनीय) एष सुखप्रत्यागत शिवराजोऽभिवादये । (इति पादयोः पतति) ।

राजमाता—(सविस्मयम्) अहो वत्स शिवराज । न खलु मयाऽभिज्ञातोऽसि । (सानन्दाश्रु हस्तयोर्गृहीत्वा) वत्स उत्तिष्ठ । दिष्ट्याद्योज्जीवितास्मि ।

मुक्तस्य दुष्टयवनाधिपपाशबन्धात्,
प्रत्यागतस्य पुरतो मम सस्थितस्य ।
एतत्तवाननमुपोढनवप्रसाद
मा तर्पयत्यतितरा नवशीतकान्तम् ॥१

वत्स पूर्वमेव मयादिष्टेन मन्त्रिणा स्वायत्तीकृताश्चाकणसह्यदुर्गाः । तद्दण्डनीतिमेव समाश्रित्य विजित्य च महाराष्ट्रप्रदेश सपादय तव साम्राज्याभिषेक मङ्गलम् ।

रणामकर) सुखपूर्वक वापस आया यह शिवराज प्रणाम करता है । (चरणो पर गिरता है ।)

राजमाता—(विस्मय मे पडकर) अहो वत्स शिवराज । निश्चित ही मैं पहिचान न सकी । (आनन्दाश्रुओं सहित हाथो से पकडकर) पुत्र उठो । भाग्य से पुन जीवित हुई ।

दुष्ट यवन सम्राट् के पाशबन्धन से छूटकर वापस आए हुए मेरे सामने खडे तुम्हारा यह मुख नव चन्द्रमा के सदृश नयी छवि प्राप्त कर लेने के कारण मुझे अत्यन्त आनन्द पहुँचा रहा है ।१

वत्स मेरे आदेशानुसार पहले से ही मत्री ने चाकण आदि दुर्गों को अधिकार मे कर लिया है ।

अतएव दण्डनीति का सहारा लेकर, महाराष्ट्र प्रदेश को जीतो और अपना साम्राज्याभिषेक पूर्ण करो ।

शिवराज—अम्ब त्वदादेशानुरोधेनाविलम्बेनैव निर्वर्तयिष्येऽभिषेकमङ्गलम् । अत पर च स्वातन्त्र्येणैव प्रवर्तिष्यते मम राज्यतन्त्रम् । क कोऽत्र भो ।

कञ्चुकी—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देव ।

शिवराज—मन्त्रगृहमार्गमादेशय ।

कञ्चुकी—इत इतो देव । (उभौ परिक्रामत) एतन्मन्त्रगृहद्वार प्रविशतु देव । (इति निष्क्रान्त)

(तत प्रविशन्ति मन्त्रगृहावस्थिता मन्त्रिण)

मन्त्रिण—(उत्थाय) स्वागत देवस्य ।

शिवराज—भवान्यनुग्रहेण खलु रक्षितोऽस्मि ।

मन्त्रिण—देव, अद्य खल्वस्माक महाराष्ट्रस्य च सुप्रभातम् ।

वैतालिक—(नेपथ्ये) विजयता देव ।

शिवराज—अम्ब ! आपके आदेशानुसार शीघ्र ही अभिषेक का कार्य पूर्ण होगा । और मेरा राज्यशासन स्वाधीन होकर चलेगा । कौन, कोई है ?

कचुकी—(प्रवेशकर) आज्ञा देव ।

शिवराज—मत्रणागृह का मार्ग दिखाओ ।

कचुकी—इधर, इधर से देव । (दोनों घूमते हैं) यह है मत्रणाकक्ष का द्वार । (चला जाता है)

(उसके बाद मत्रणागृह में स्थित मत्रियों का प्रवेश)

मत्रिगण—(उठकर) स्वागत देव ।

शिवराज—भवानी के अनुग्रह से मेरी रक्षा हुई ।

मत्रिगण—देव ! आज हमारे और महाराष्ट्र के लिए सुप्रभात का अवसर है ।

वैतालिकगण—(नेपथ्य मे) विजय हो देव ।

कुटिलयवनपाशान्नीतियोगापसृप्तो
द्युमणिरिव समन्ताद्राहुणा ग्रस्तमुक्तः ।
चिरविरहविपन्नान् रञ्जयन् सह्यदुर्गा-
नुपचितनवतेजा राजते राजसूर्यः ॥२

(अष्टोत्तरशतशतघ्नीध्वनोपक्रम)

शिवराज—मन्त्रिगण परम प्रीणयति मां भवतां सह्यजनानां च राजनिष्ठा ।

प्रतिहार—(प्रविश्य) विजयतां देव । कोऽपि वैदेशिको द्वारि संप्राप्तः ।

शिवराज—प्रवेशयैनम् ।

प्रतीहार—तथा । (इति निष्क्रान्त)

वैदेशिक—(प्रविश्य) विजयतां देवः । कृतघ्नेन मोगलेशेन त्वमसि शिवराजस्य पक्षपातीति निर्भर्त्स्य स्वाधिकारात्प्रच्यावितो महाप्रतापो

राहु के सदृश चारों ओर से यवनों के नीतिपाश द्वारा सूर्य के समान ग्रस्त, होकर, अब उससे मुक्त यह राजसूर्य (राजाओं में सूर्य के समान) नवीन तेज (वीर्य से युक्त, शोभित) चिरकाल से वियुक्त सह्यदुर्गों को आनन्दित कर रहे हैं ।२

(एक सौ आठ तोपों का स्वर)

शिवराज—मन्त्रिगण, आप लोगों और सह्य निवासियों की राजनिष्ठा से मैं बहुत प्रसन्न हूँ ।

प्रतीहार—(प्रवेशकर) विजय हो देव । कोई विदेशी द्वार पर आया है ।

शिवराज—उसे ले आओ ।

प्रतीहार—ठीक है । (चला जाता है)

वैदेशिक—(प्रवेशकर) देव की विजय हो । महाप्रतापी जयसिंह को, कृतघ्न मुगल सम्राट् ने उसके विरुद्ध यह दोषारोपण कर कि

जयसिंहः । ततश्च मोगलराजधानीं विनिवृत्तोऽसौ दुर्मनायमानो मार्ग एव—'आसादितं मया कृतघ्नसपर्याया मर्मविदारणं फलम् । यद्

> आजन्मनः परिचरन् यमनन्यभक्तिः
> स्वजातिजनानपि भटाननयं विनाशम् ।
> सोऽयं वलीपलित विगलद्देहयष्टेः
> संतर्जनेन मम हा हृदयं भिनत्ति ॥२

हा विश्वनाथ देहि मे शरणम्'—इत्याक्रुश्य प्राणानजहात् । तदनन्तरं च सार्वभौमानुमत्या तत्पदमारूढो मोगल युवराजसहायो जसवन्तसिंहः ।

शिवराज—(निःश्वस्य) विक्रमशालिनामपि नयमार्गविच्युतानामपरिहार्य एवेदृशो दुर्विपाकः ।

प्रधानमन्त्री—देव नूनं शोचनीयामवस्थामापादितोऽयं प्रवीरो मोगलेन्द्रहतकेन ।

तुम शिवराज के पक्षपाती हो, उसके अधिकार से च्युत कर दिया है। उसके बाद मुगलराजधानी की ओर जाते हुए खिन्न मन वह रास्ते में ही—*कृतघ्न की सेवा करके मैंने यह मर्मभेदी फल प्राप्त किया है।*

आजन्म मैंने जिस सम्राट् की एकनिष्ठ भाव से सेवा करते हुए अपने जातीय जनों, वीरों तक का नाश कर डाला। उसी, इस वृद्ध शरीर वाले की भर्त्सना से मेरा हृदय विदीर्ण होता जा रहा है।२ हे विश्वनाथ ! मुझे शरण दें। 'इस प्रकार स्वयं को कोसता, उसने प्राणों को त्याग दिया। उसके बाद मुगलयुवराज से सेवित जसवन्त सिंह उसका उत्तराधिकारी बनाया गया।

शिवराज—(निःश्वास छोडकर) विक्रमशाली पुरुषों के लिए भी नीतिमार्ग छोड देने पर इस प्रकार की विपत्तियाँ आती हैं।

प्रधानमन्त्री—देव, निश्चित ही दुष्ट मुगलसम्राट् ने उस वीर की दशा शोचनीय बना दी।

शिवराज—सम्प्रति खलु मान्धाराणां नियमने व्यापृतोऽस्ति मोगलेशः। तदस्माभिर्महार्हरत्नोपायनैः समाराध्य दक्षिणदेशाधिपं सद्य एवात्मसात्कर्तव्यं महाराष्ट्रम् ।

प्रधानमन्त्री—देवस्योपस्थितेः पूर्वमेव मया स्वायत्तीकृताश्चाकण-प्रभृतयः सह्यदुर्गाः । अवशिष्टानां दुर्गाणां कल्याणप्रान्तस्य चाक्रमणाय प्रस्थापिता सेनानिवहाः । परन्तूदयभाणपालितं सिंहगडदुर्गं कथमाक्रमणीयम् इत्यतीवोत्कण्ठितोऽस्मि ।

शिवराज—(विचिन्त्य) न कोऽप्यमात्यमन्त्रेस्तत् कार्यं साधयितुं समर्थोऽस्ति । सम्प्रति तु स्वात्मजस्योद्वाहकर्मणि व्यग्रोऽसौ नार्हति प्रयाणानुशासनम् ।

(ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेण तानाजीः)

शिवराज—सम्प्रति मुगलसम्राट मान्धातों को नियन्त्रित करने में व्यस्त है। अतः हमलोग बहुमूल्य रत्नादि के उपहार द्वारा दक्षिण प्रदेश के राज्यपाल को तुरन्त अपने वश में करके समस्त महाराष्ट्र को जीत लें।

प्रधानमन्त्री—देव के आने से पूर्व ही मैंने चाकण आदि सह्यदुर्गों को अधिकार में कर लिया है। शेष दुर्गों में से कल्याण प्रान्त पर आक्रमण करने के लिए मैंने सैन्य समूह प्रेषित कर दिया है। परन्तु उदयभाण द्वारा रक्षित सिंहगडदुर्ग कैसे अधिकार में हो, यह अत्यधिक चिन्तनीय है।

शिवराज—(सोचकर) मन्त्री के अतिरिक्त अन्य कोई भी यह कार्य सम्पादित करने में समर्थ नहीं है। इस समय अपने पुत्र के विवाह कार्य में व्यग्र होने के कारण प्रस्थान-हेतु उन्हें आदेश नहीं दिया जा सकता।

(उसके पश्चात् परदा हटाकर अचानक तानाजी का प्रवेश)

शिवराजः—(सविस्मयम्) अहो अमात्यः। अपि सम्पन्न मङ्गलकार्यम्

तानाजी—देवस्यानुग्रहेणैतत्सुसम्पन्नमेव। यत स्वयमेवाम्बा निर्वाहयिष्यति विवाहोत्सवम्। तया चादिष्टोऽहमद्यैव प्रतिष्ठे सिंहगडदुर्गं विजयाय। तदत्र भवतु वीतौत्सुक्यो देव.।

शिवराज—अहो धन्योऽसि मम प्रधानवीर। अद्य खलु

तृणमिव मत्वात्मजकौतुकक्रियां राष्ट्रैकभक्त्योद्वहता धुरं रणे।
एकान्ततो मातृनिदेशवर्तिना संपादितं दाशरथेर्यशस्त्वया ॥४

इदानीं तु हस्तगत एव मम सिंहगडदुर्गः। यतः

एको महेशस्त्रिपुरस्य भेत्ता, हरिर्यथा दैत्यकुलस्य हन्ता।
तथा त्वमेवासि ममाग्रवीर न चेतरो दुर्गवरस्य जेता ॥५

शिवराज—(आश्चर्य में) अहो, मन्त्रिवर! क्या मंगल कार्य सम्पन्न हो चुका।

तानाजी—देव की कृपा से वह सुसम्पन्न ही है। क्योंकि माताजी स्वयं ही विवाहोत्सव-कार्य सम्हालेंगी। और उन्होंने मुझे आज ही सिंहगडदुर्ग के विजयार्थ प्रस्थान हेतु आदेश दिया है। अतः इस सम्बन्ध में देव निश्चिन्त हों।

शिवराज—ओह, मेरे प्रधानवीर तुम धन्य हो। आज वस्तुत. पुत्र के विवाह कार्य को तृण के समान मानकर राष्ट्रभक्ति के कारण, रण में सेनापतित्व स्वीकार करनेवाले, माता के निर्देश का पालन करने से तुमने राम के यश को प्राप्त कर लिया।४

अब तो सिंहगडदुर्ग हस्तगत ही है। क्योंकि

जैसे एक शंकर त्रिपुर का भेदन करनेवाले हैं, एकाकी ही इन्द्र दैत्यकुल का नाश करनेवाले, उसी प्रकार हे प्रधानवीर! तुम अकेले मेरे दुर्गों के विजेता हो।५

तानाजी—देव प्रभूणामेव प्रभावेण सर्वत्र नियोज्यानां साध्यसिद्धिः। तद्

आक्रम्य दुर्भेद्यमरातिसैन्यं, सद्यो विजेष्ये सहसाग्रदुर्गम्।
सेनाधिपत्ये हरिणा नियुक्तो, न किं कुमारो हतवान् सुरारीन्॥६

शिवराज—तत्प्रतिष्ठतां मे प्रधानवीरो दुर्गविजयाय।

तानाजी—यथाज्ञापयति देव। (इति निष्क्रान्तः)

द्वारपाल—(प्रविश्य) विजयतां देवः। मोगलेशमुद्राङ्कितपत्रहस्तो दूतो द्वारि तिष्ठति।

शिवराज—प्रवेशयैनम्।

द्वारपाल—तथा। (निष्क्रान्तः)

दूत—(प्रविश्य) विजयतां महाराजः। दक्षिणापथाधिपेन प्रशस्याभिनन्दनपुरःसरं प्रेषितमेतत्सार्वभौमशासनपत्रम्। (इति पत्रमर्पयति)

तानाजी—देव, स्वामी के ही प्रभाव से सर्वत्र सेवकों की सिद्धि होती है। अत:

मैं दुर्जेय शत्रुसेना पर आक्रमण करके शीघ्र ही श्रेष्ठ दुर्ग को विजय कर लूंगा। क्या इन्द्र द्वारा सेनापति के रूप में नियुक्त कुमार कार्तिकेय ने देवताओं के शत्रुओं को मार नहीं डाला था? वरन मारा था।६

शिवराज—मेरे प्रधानवीर! तो दुर्ग विजय के लिए प्रस्थान करो।

तानाजी—जैसी देव की आज्ञा। (चला जाता है)

द्वारपाल—(प्रवेशकर) देव की विजय हो। मुगलसम्राट् का मुद्रांकित पत्र लिए हुए दूत द्वार पर प्रतीक्षा कर रहा है।

शिवराज—प्रवेश करो उसे।

द्वारपाल—ठीक है। (चला जाता है)

दूत—(प्रवेशकर) विजय हो महाराज। दक्षिण के राज्यपाल ने अभिनन्दन सहित सार्वभौम सम्राट् का यह पत्र भेजा है। (पत्र देता है।

शिवराजः—(आदाय) मन्त्रिन् उद्घाट्य वाचयैतत् । (इत्यर्पयति)

मन्त्री—तथा । (इति वाचयति)

निजराजनगरात्केनापि साम्राज्यविद्वेषिणापजापकेनापसारित-स्यापि साम्राज्यसपर्यानुरक्तस्यानेकसाहसविक्रमशालिनो महम्मदीयधर्म-रक्षकस्य शिवराजस्य सर्वानपराधान् मर्षयित्वा स च राजपदेन सयोज्य तस्मै सन्निहितराज्ययोश्चतुर्थांशसंग्रहाधिकारं वितरति सार्वभौमः । इति ।

शिवराज—मन्त्रिन्, अपूर्वं खल्वयमनुग्रह सार्वभौमस्यदक्षिणा-पथाधिपस्य च । दूत त्व सार्वनिवेदय दक्षिणापथाधिपाय यदचिरेण प्रतापरावद्वितीयो मम वीरात्मज उपैष्यति तवान्तिकमिति ।

दूत—तथा । (इति निष्कान्त)

शिवराज—मन्त्रिन्, नाय बहुमान किंतु प्राणसशयान्ता प्रतारणा । यतः

शिवराज—(लेकर) मन्त्रिन्, खोलकर इसे बाचो । (देते है)

मंत्री—अस्तु । (बाचता है)

राजधानीनगर से किसी साम्राज्यविरोधी द्वारा बाहर निकाले हुए, साम्राज्य की सेवा मे रहने की इच्छावाले, विक्रमशाली, महम्मदीय धर्म के रक्षक, शिवराज के सभी अपराधो को क्षमाकर के, राजपद पर प्रतिष्ठित कर, पड़ोस के दो राज्यो का चतुर्थांश ग्रहण करने का अधिकार उसे सम्राट् देते हैं।

शिवराज—मन्त्रिन्, निश्चित ही यह दक्षिण के राज्यपाल का महान् अनुग्रह है । दूत तुम दक्षिण के राज्यपाल को सूचित करो कि शीघ्र ही प्रतापराव के साथ मेरा वीर पुत्र उनके पास पहुँचेगा ।

दूत—ठीक है । (चला जाता है)

शिवराज—मन्त्रिन्, यह बहुत बड़ा सम्मान नही किन्तु प्राण-संशयात्मक छल है । क्योंकि

कृतापकारेषु परेषु दुर्मतिस्त्वकाण्डमाविष्कुरुते य आदरम्।
संमानदाम्ना स नियम्य तान् पशून् वधस्थलीं सौनिकवन्निनीषति ॥७

मन्त्री—देव इदानीमन्यतो व्याप्ततेनानेन युद्धविरामार्थं पुरस्कृतोऽयं सामोपचारः। परमनेनैव तव करतलोपस्थापितेव साम्राज्यसिद्धिः। यतः

दिल्लीश्वरानुमतराज्यपदं पुनस्ते
स्वातन्त्र्यमेव परितः प्रकटीकरोति।
सोऽयं चतुर्थहरणे प्रथितोऽधिकार-
स्त्वां मण्डलेश्वरपदमर्पयति प्रशस्तम् ॥८

शिवराज—अहो सम्यग्गृहीतं त्वया सार्वभौमशासनतत्त्वम्। तथापि नायमवसरोऽस्माभिरुपेक्षणीयः। तद् दंभमाश्रित्य शठ एव शासनीयोऽस्माभिरयम्।

मन्त्री—सर्वथाऽभिनन्दनीयो देवस्याध्यवसायः।

दुष्टों द्वारा अपना अपकार होने पर अकारण इस प्रकार सम्मान दिया जाना उसी प्रकार है जैसे पशु को आदर सहित वध स्थान को ले जाना।७

मन्त्री—देव, इस समय अन्यत्र युद्ध में व्यस्त रहने के कारण सम्राट् ने यह शान्ति नीति अपनायी है। परन्तु इस प्रकार साम्राज्य-सिद्धि आपके हाथ में आ गयी। क्योंकि

दिल्लीश्वर द्वारा आपका राज्यपद स्वीकार कर लेना, आपके लिए स्वाधीनता की पूर्ण घोषणा है। और चतुर्थांश ग्रहण करने का अधिकार आपको मण्डलेश्वर का उच्च अधिकार प्रदान कर रहा है।८

शिवराज—अहो, तुमने यह सम्राट् के शासन का तत्त्व ठीक ही सोचा। फिर भी हम इस अवसर की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। कूटनीति द्वारा इसके अभीष्ट को हम प्राप्त करना चाहिए।

मन्त्री—देव का निर्णय सर्वथा अभिनन्दनीय है।

शिवराजः—तत्प्रतिष्ठतां कुमारेण सह प्रतापरावो दक्षिणापथाधिपराजधानीम् । तत्र च निवसताऽनेन कर्तव्यः समन्ततोऽस्मच्चतुर्थांशसंग्रहः ।

प्रतापराव—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—मन्त्रिन्, गान्धारविजयानन्तरमेवाभियोक्ष्यतेऽस्मान् धूर्तो मोगलेश्वरः । तत् क्षिप्रमेव सन्नाहितबलैरस्माभिश्चतुर्थांशसंग्रहमिषेणाक्रम्य स्वायत्तीकर्तव्यः समग्रो महाराष्ट्रप्रदेशः । भवन्त्वद्य प्रमाणाभिमुखास्त्वदधिष्ठिता मे रणप्रवीराः । यावदहमपि करोपसंग्रहार्थं प्रतिष्ठे गुर्जरप्रदेशम् । प्रत्यागतेष्वस्मासु प्रवर्तिष्यते साम्राज्याभिषेकमहोत्सवः । तत्संभ्रियन्तां संभाराः पुरोहितपुरोगमैः कर्मसचिवैः ।

मन्त्री—यथाज्ञापयति देव । (इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

समाप्तोऽयं दुर्गविजयनामा

नवमोऽङ्कः

●

शिवराज—तो, कुमार के साथ प्रतापराव को दक्षिणाधिप की राजधानी के लिए भेज दो। और वहाँ रहकर यह चारों ओर से चतुर्थांश संग्रह करें।

प्रतापराव—देव की जो आज्ञा। (चला जाता है)

शिवराज—मंत्रिन् गान्धारविजय के पश्चात् तुरन्त धूर्त मुगल-सम्राट् हमें व्यस्त कर लेगा। अतः शीघ्रही अपनी सशक्त सेना द्वारा चतुर्थांश संग्रह करने के बहाने से आक्रमण कर समस्त महाराष्ट्र प्रदेश को अधिकार में कर लेना चाहिए। आज हमारे रणवीर तुम्हारे सेनापतित्व में प्रस्थित हो जायें। जब तक मैं कर संग्रह करने के लिए गुर्जरप्रदेश को प्रस्थान करता हूँ। मेरे वापस आ जाने के बाद साम्राज्याभिषेक महोत्सव सम्पन्न होगा। इसलिए पुरोहित आदि अन्य कर्मचारी आवश्यक सामग्री एकत्र करते रहें।

मन्त्री—जैसी देव की आज्ञा। (सभी चले जाते हैं)

दुर्ग विजय नामक

नवाँ अंक समाप्त

●

दशमोऽङ्कः

(ततः प्रविशतो राजपुरुषौ)

प्रथमः—अहो बतासत्यसन्धस्य मोगलेशस्य कुटिलपाशाद्विनिर्मुक्तेन महाराजेन पुनरिह लीलायुद्धं स्वायत्तीकृता महाराष्ट्रभूः।

द्वितीयः—भद्र तथापि सिंहगडदुर्गजयेन नासीद्देवस्य परमः परितोषः।

प्रथमः—अये कथं विजयेऽप्यपरितोष इत्युच्यते।

द्वितीयः—तद्दुर्गजयाय प्रेषितस्य तानाजीवीरस्य प्राणान्तसङ्कटेनोद्वेजितो देवः।

प्रथमः—कुतो विजेतुरपि प्राणसङ्कटम्।

दसवाँ अंक

(उसके बाद दो राजपुरुषों का प्रवेश)

प्रथम—ओह आश्चर्य, विश्वासघाती मुगलसम्राट् के कुटिल बन्धन से स्वयं को मुक्त कर, सहज युद्ध से महाराज ने महाराष्ट्र प्रदेश पर अधिकार कर लिया।

द्वितीय—भद्र फिर भी सिंहगढ़दुर्ग की विजय से देव को पूर्ण सन्तोष नहीं है।

प्रथम—अरे! विजय होने पर भी असन्तोष, ऐसा क्यों कहते हो।

द्वितीय—उस दुर्ग की विजय के लिए प्रेषित तानाजीवीर के प्राणान्त से देव को क्षोभ है।

प्रथम—विजेता के लिए प्राणसङ्कट कैसे।

द्वितीय—भद्र, गाढान्धकारवृत्ते निशीथे गोधामवलम्ब्य तद्दुर्ग-प्राकारमासाद्यैकेन मावलेवीरेणाग्र प्रसारिताभि रज्जुभिरय प्रवीरोऽध्यारोहयन्निज सैनिकगणम् । अथ प्रवृत्ते घोरसंग्रामे परस्पर नियुध्य मानावुदयभाणतानाजीवीरौ वीरगति समापद्येताम् ।

प्रथम—अहो स्वाम्यर्थं प्राणानुत्सृजताऽनेन खलु कृतकृत्यता नीत क्षात्र जन्म ।

द्वितीय—अत्रान्तरे च तेनैव मार्गेणाप्याऽऽरुह्येन सूर्याजीवीरेण परास्य रिपुबल स्वविजयख्यापनाय प्रज्वालितो महानल । तत्क्षण तेन सञ्जातहर्षेणापि देवेन यदा परेद्युर्निजबालसुहृदस्तानाजीवीरस्य प्राणात्ययोदन्त आकर्णितस्तदानीमेव विषण्णवदनेन सहसोदीरित 'हा कष्टमेक' सिंह प्रतिप न । अपरस्तु विपन्न' ।' इति ।

प्रथम—अहो, अनेकवीराऽऽहुतिसाध्या हि साम्राज्यसिद्धिः।

द्वितीय—भद्र, रात्रि के घोर अधकार म गोध के सहारे उस दुर्ग के प्राकार पर पहुँच मावले वीर ने नीचे लटकायी रस्सी की सहायता से अपने सैनिको को इस दुर्ग मे चढ़ाया। घोर सग्राम में परस्पर युद्ध करते हुए उदयभाण और तानाजी दोनों वीर वीरगति को प्राप्त हो गए ।

द्वितीय—अहो स्वामी के कार्यार्थ अपने प्राणो की आहुति देकर इसने अपना क्षत्रिय जन्म सफल कर दिया ।

प्रथम—इसी बीच उस मार्ग से ही वीर सूर्याजी ने रिपुदल को परास्त कर विजय प्रतीति स्वरूप महानल प्रज्वलित कर दिया । उससे हर्षित होकर भी देव ने जब दूसरे दिन अपने बाल सुहृद् तानाजी वीर का प्राणान्त सुना तो दुखी होकर सहसा कहा—'हा कष्ट एक सिंह अन्दी हुआ दूसरा नष्ट ।'

प्रथम—अहो, वस्तुत अनेक वीरो की आहुति से साम्राज्यसिद्धि मिलती है ।

द्वितीय—अथ किम् । तत प्रभृति नु सर्वत्राप्रतिहतप्रसरोऽभूद्विजयध्वजो देवस्य । आवाजावीरेण स्वायत्तीकृत कल्याणप्रदेश । प्रधान मन्त्रिणा च माहुलीदुर्ग । प्रतापरावेण च साल्हेरदुर्ग । एव समन्ततो विजयरमाश्लिष्टस्य देवस्य साम्राज्यमहोत्सवमभिनन्दितु सम्प्रति समुपस्थितेन सामन्तमण्डलेन समाकुलोऽयं दुर्गराज परमा श्रियमादधाति ।

प्रथम—दैवतानुग्रह तरेण नैव सम्भवत्येतादृश सौभाग्यम् ।

द्वितीय—अपि च सम्प्राप्ता अत्र साक्षाद्वेदमूर्तय काशीनिवासिनो गागाभट्टप्रभृतयो विप्रवर्या देवस्य साम्राज्याभिषेक सपादयितुम ।

प्रथम—एव समुपार्जिता महाराजेन सकलभारतव्यापिनी यश समृद्धि ।

द्वितीय—भद्र जात खलु सभा प्रवेशसमय । यावत्तत्रोपेव । (इति परिक्रामत)

द्वितीय—यह सत्य है । उसी समय से देव का विजयध्वज सर्वत्र फहर उठा । आबाजी वीर ने कल्याण प्रदेश अधिकार न किया । प्रधानमंत्री ने माहुली दुर्ग । और प्रतापराव ने साल्हेरदुर्ग । इस प्रकार विजय विभूषित देव के साम्राज्यमहोत्सव म सम्मिलित होने के लिए चारो ओर से आए सम्प्रति उपस्थित सामन्तो से पूर्ण यह दुर्गराज परम शोभा धारण कर रहा है ।

प्रथम—दैव के अनुग्रह बिना यह सौभाग्य सम्भव नहीं ।

द्वितीय—यहाँ तक कि काशीनिवासी साक्षात् वेदमूर्ति से गागाभट आदि श्रेष्ठ ब्राह्मण देव का साम्राज्याभिषेक सपादित करने के लिए आ गए हैं ।

प्रथम—इस प्रकार महाराज ने सम्पूर्ण भारत मे व्याप्त होनेवाला यश प्राप्त कर लिया ।

द्वितीय—भद्र, सभा प्रवेश का समय हो गया । वहाँ चलना चाहिए । (दोनो घूमते हैं ।)

प्रथम—(परितो विलोक्य) नूनमदृष्टपूर्वामिव सुषमां बिभर्ति दुर्गराजः ।

ध्वजवसनपताकामण्डिता राजमार्गा,
कुसुममुकुलमालारञ्जिता कुट्टिमाश्च ।
नवविरचितरागालेख्यचित्रास्तराणि ,
दधति परमशोभां धूपितान्यङ्गनानि ॥१

द्वितीय—एवमेतद् । एते संप्राप्ता वयमभिषेकमण्डप परिसरम् । पश्यात्र

मुक्ताहिरण्मयपटारचितोपकार्या ,
वासगृहाणि विपुला गजवाजिशाला ।
कोशालयाश्च वसनाभरणान्नकोष्ठाः,
प्रख्यापयन्त्यनुपमामधिराजलक्ष्मीम् ॥२

प्रथम—(चारों ओर देखकर) निश्चय ही यह दुर्गराज पहले न देखी गयी अपूर्व सुन्दरता को धारण कर रहा है।

राजमार्ग सुन्दर वस्त्रों, ध्वज और पताकाओं से शोभित हैं, मणिजटित स्थान फूलों की कलियों से गूँथे मालाओं से सजे, नये-नये विविध चित्रों से चित्र-विचित्र वस्त्रों से ढके हुए आगन जो सुगन्धित किये हुए हैं, अत्यन्त सुन्दरता धारण कर रहे हैं।१

द्वितीय—हाँ, ऐसा ही प्रतीत हो रहा है। हमलोग अभिषेक-मण्डप के पास पहुँच गए हैं। इधर देखिए—

राज शिविर मोती और स्वर्ण से जटित वस्त्रों द्वारा निर्मित हैं, घोड़े, हाथियों के लिए विशाल भवन, बड़े-बड़े प्रासाद, कोशगृह, वस्त्रगृह और अन्नागार सभी महाराज की अपार लक्ष्मी का आभास करा रहे हैं।२

प्रथम—अप्रतिम खल्वय साम्राज्याभिषेकमहोत्सवोपक्रम । यतः

मुक्ताविद्रुमतोरणाङ्कितपुरोद्वाराणि तूर्यस्वनै—
इचीत्कारै: करिणा मृदङ्गनिनदैरातन्वते मङ्गलम् ।
काञ्चीनूपुरकिङ्किणीक्वणितकै रम्यंयशोगीतिका
गायन्ति प्रमदा महोत्सवमुदा मोदाश्रुपूर्णानना ॥३

द्वितीय—न खल्वय केवल महोत्सव किंतु महाराष्ट्रियाणा स्वातन्त्र्यसूर्योदयोऽपि (सभामण्डप प्रविश्य) भद्र पश्यैष निर्वर्तित साम्राज्याभिषेकमङ्गलो देवो मातरमभिवादयते ।

चण्डांशुप्रसरासपादरुचिदूरापरासितापय—
प्रासीत्सततपनद्युति परिपतन् देशान्तर देशत ।
ज्योत्स्नासमस्तसमदानपरम पीयूषरत्नाकर,
सोऽय श्रावसमों वधाति सुषमामाह्लादयन्स्वा प्रजा ॥४

प्रथम—वस्तुत साम्राज्याभिषेक की यह तैयारी अनोखी है। क्योंकि

सामने के द्वार मोती और मणियो से खचित व द्वारो द्वारा सजे है हाथियो के चीत्कार तुरही की ध्वनि मृदग स्वर से मगल बिखर रहा है।प्रसन्नता के आँसुओ से पूर्ण मुखवाली स्त्रियाँ नूपुर एव मेखला का सुन्दर स्वर बिखेरती हुई यश का गान कर रही हैं।३

द्वितीय—यह केवल महोत्सव ही नही बल्कि मराठो के स्वातन्त्र्य-सूर्य का उदय भी है। (सभा मण्डप मे प्रवेश कर) भद्र, देखो यह महाराज साम्राज्याभिषेक के मगल काय से निवृत्त होकर माता को प्रणाम कर रहे हैं।

अपने प्रचण्ड तेज की किरणों से शत्रुओं को, ताप देनेवाला या जैसे सूर्य एक ओर से दूसरी ओर घूमकर प्रकाश बिखेरता रहता है। वही अमृत के समुद्र के सदृश चन्द्रमा की सुन्दरता को धारण किये हुए, जैसे उसकी ज्योत्स्ना समस्त लोक को शीतलता प्रदान करती है, उसी प्रकार अपनी प्रजा को दान मान द्वारा प्रसन्न कर रहा है।४

तदावयोरप्यासनपरिग्रहं कुर्मः । (इति निष्क्रान्तौ)

(पटीक्षेप)

इति विष्कम्भकः

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः शिवराज)

शिवराज—धन्य एष सम्पादितसाम्राज्याभिषेकमङ्गलो महिषी द्वितीयः शिवराजोऽभिवादयते । (इति महिष्या सह पादयोः पतति)

राजमाता—(सानन्दाश्रु) वत्स चिरंजीव । वत्से चिरं सकल-सौभाग्यभाजनं भूयाः । दिष्ट्याद्य खलु मया प्रत्यक्षीक्रियते पूर्वानुभूतं स्वप्नदर्शनम् । यतः

संस्थाप्य विक्रमजितं भुवि धर्मराज्यं
पुत्र त्वया कुलयशः प्रथितं त्रिलोक्याम् ।
यच्चापि दुर्लभतरं तपसश्चयेन,
तद्दं प्रवीरजननी पदमर्पितं मे ॥५

हम लोग अपना आसन ग्रहण करें । (दोनों निकल जाते हैं)

(परदा गिरता है)

विष्कम्भक समाप्त

(उसके बाद पूर्व वर्णनानुसार शिवराज का प्रवेश)

शिवराज—माते, साम्राज्याभिषेक का मंगल कार्य सम्पादित करके यह शिवराज, द्वितीय रानी के साथ प्रणाम करता है । (रानी-सहित पैरों पर गिरता है)

राजमाता—(प्रसन्नता के आँसू सहित) वत्स ! चिरजीवी बनो । वत्से ! चिरकाल तक समस्त सौभाग्यों की पात्र बनी रहो । भाग्य से आज मेरे सामने पहले देखा गया अपूर्व स्वप्न प्रत्यक्ष हो गया । क्योंकि

अपने पराक्रम से जीतकर पृथ्वी पर धर्मराज्य की स्थापना द्वारा पुत्र तुमने कुल का यश त्रिलोक में प्रसिद्ध कर दिया । अत्यन्त कठिन तपश्चर्या से भी प्राप्त करना जो कठिन है, वह श्रेष्ठ वीर की माता का पद मुझे प्रदान किया ।५

उभौ—(सप्रश्रयम्) प्रतिगृहीताशीः ।

शिवराज—अम्ब प्रतिपद त्वदनुशासनानुवर्तिनैव मया समासादितोऽयं लोकोत्तरोत्कर्षः ।

(इति छत्रचामरधरैरुपसेवितो रत्नसिंहासनमुपसृत्य महिष्या सहारोहति)

सभ्याः—(उत्थाय) विजयतां छत्रपतिमहाराजः । विजयतां माम्राज्ञी ।

(इति सुवर्णकुसुमानि विकिरन्ति)

(प्रधानाधिकारिणः सामन्त प्रतिनिधयश्च मणि मुक्ता स्वर्णकुसुमस्रज अर्पयन्ति)

(नेपथ्ये)

वैतालिकौ—विजयतां महिषीद्वितीयश्छत्रपतिमहाराजः साम्राज्याभिषेकमङ्गलेन ।

दोनों—(विनम्रता से) आशीष से अनुगृहीत हैं ।

शिवराज—माते ! सदा आपके आदेशानुसार चलकर ही मैंने यह लोकोत्तर उन्नति-पद को प्राप्त किया है ।

(छत्र और चामरधारी सेवकों द्वारा सेवित, रानी-सहित रत्न सिंहासन पर बैठते हैं)

सभासद—(उठकर) छत्रपति महाराज की विजय हो । साम्राज्ञी की जय हो ।

(स्वर्णफूल बिखेरते हैं)

(प्रधान अधिकारी, सामन्तों के प्रतिनिधिगण मणि, मुक्ता, स्वर्ण और फूलों की मालाएँ अर्पित करते हैं)

(नेपथ्य से)

वैतालिक—साम्राज्याभिषेक मङ्गल द्वारा महारानी-सहित छत्रपति महाराज की विजय हो ।

द्विजवरसविधेऽद्रंमंत्रतोयाभिषिक्तो
विजयपदविशालैर्दिव्यकन्याऽभिगीतः ।
रुचिरमणिकिरीटो रत्नसिंहासनस्थः
विबुधपतिरिव त्वं राजसे भारतेन्द्र ॥६

(षष्ठोत्तरशततमोत्सवोपक्रमः)

बालिनी—(वीणावाद्येन गायति.)

(मालकोशरागेण त्रितालेन गीयते)

कृपालो छत्रपते महाराज ॥
भारतवर्षनरेश कुलपते,
जनसमूर्जितविक्रमकीर्ते,
रमापते महाराज । कृपालो० ॥१

ख्यातश्रीगुणगणगणधारण-
गुणसंपादितराष्ट्रोद्धारण,
धर्मपते महाराज । कृपालो० ॥२

समाहृत, श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा अभिमंत्रित जल से अभिषिक्त, सुन्दर कन्याओं द्वारा गाये हुए विजयगीत के स्वर-विस्तार से, सुन्दर मणिकिरीट धारण किए, रत्नसिंहासन पर आसीन, हे भारतेन्द्र ! तुम इन्द्र के सदृश शोभित हो रहे हो ।६

मायापहृतनिखिलभूभार—
स्त्वमसि कृपानिधिरिवावतारः
विबुधपते महाराज । कृपालो० ॥३

अरिगणतिमिरहरमिहिर—
स्त्वं विलससि महसा रणवीर—
शिववापते महाराज । कृपालो० ॥४

निजजनपदपुरजनाभिनन्दित
देवद्विजवरकिन्नरवन्दित
विश्वपते महाराज । कृपालो० ॥५

गागाभट्ट—दिष्ट्याऽद्य वर्धते महाराजश्चिरप्रार्थितेन साम्राज्य-श्रीविलसितेन ।

बाहुप्रतापवसुधारितदिगन्तकीर्ति
सामन्तमौलिमणिरञ्जितपादपीठ ।
राजन्यमन्त्रिसचिवैः समुपासितस्त्वं
साम्राज्यवैभवयुतोऽतितरां विभासि ॥७

कर दिया ।२ हे विबुधपते ! माया (कूटनीति) द्वारा समस्त भूमि (प्रदेश) के भार को दूर करनेवाले हे कृपानिधि ! तुम शिव के अवतार हो ।३ हे सूर्य ! (महत्तेज को धारण करनेवाले क्षत्रियवीर) जैसे अन्धकार को सूर्य दूर कर देता है उसी प्रकार शत्रुओं के व्यूह को चीरनेवाले हे रणवीर तुम क्षात्रतेज से विलस रहे हो ।४ हे विश्वपते ! अपने जनपद और पुरजनों द्वारा अभिनन्दित और देवों, किन्नरों एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा वन्दित होकर शोभा पा रहे हो ।५

गागाभट्ट—भाग्यवशात् चिरप्रार्थित साम्राज्यश्री-विलास द्वारा महाराज बढ़ रहे हैं ।

अपने बाहु (सैनिकगणों) के प्रताप से जगद्व्यापिनी कीर्ति अर्जित कर, तुम साम्राज्य-वैभव से युक्त हो अत्यधिक शोभित हो रहे हो—तुम्हारे चरण सामन्तों के माथे पर रखे मणिजटित मुकुटों से शोभित हैं और राजाओं, मन्त्रियों एवं सचिवों द्वारा तुम सेवित हो रहे हो ।७

शिवराज.—भगवन् परदेवताप्रसादेन श्रीगुरुरामदासचरणानुग्रहेण चाद्य समासादितं मया साम्राज्यवैभवम् । तद्

चिर कषायध्वजमण्डितानि राष्ट्रे सभामण्डपमन्दिराणि ।
साम्राज्यदेवस्य गुरोः समन्तात् प्रख्यापयन्त्वप्रतिमं प्रभावम् ॥८

प्रधानमन्त्री—(प्रतिनिधिमण्डलं निर्दिश्य) एते कुतबशाहोशप्रभृति-सामन्तप्रतिनिधयो हस्त्यश्वरत्नहिरण्योपायनैर्देवस्य साम्राज्याभिषेक-महोत्सवमभिनन्दन्ति ।

शिवराज.—मन्त्रिन् सामन्तसाहाय्येनाद्य वयमनुभूयते एतन्मङ्ग-लम् । तस्मादेतान् तोषयैताम् महार्हवस्त्राभूषणाविभिः ।

प्रधानमन्त्री—तथा । (इति यथादिष्टं कुरुते)

शिवराज—भगवन्, परमशक्तिमान् और गुरुवर्य श्री रामदास के चरणों के अनुग्रह से आज यह साम्राज्य-वैभव मुझे प्राप्त हुआ है । इसलिए

राष्ट्र के समस्त भवनों और सभामण्डप को कषाय ध्वज से शोभित करके साम्राज्य देव हमारे गुरुश्रेष्ठ के अपरिमित प्रभाव को चारों ओर चिरकाल तक फैलाया जाय ।८

प्रधानमन्त्री—(प्रतिनिधि मण्डल की ओर संकेत कर) कुतबशाह आदि ये सामन्त प्रतिनिधि हाथी, घोड़े, रत्न और स्वर्ण आदि उपहारों द्वारा देव के साम्राज्याभिषेक-महोत्सव का स्वागत करते हैं ।

शिवराज—मन्त्रिन्, सामन्तों की सहायता से आज हम इस मंगल अवसर का अनुभव कर रहे हैं । अतः उनके प्रतिनिधियों को बहुमूल्य वस्त्रों तथा आभूषण प्रदान कर सन्तुष्ट करें ।

प्रधानमन्त्री—ठीक है । (आदेशानुसार करता है)

शिवराजः—अथ च सभाजयतु कोशाध्यक्षो लक्षमुद्राभिराचार्यं चतुर्विंशतिसहस्राभूषणैश्च सर्वान् द्विजोत्तमान् ।

कोषाध्यक्षः—तथा । (इति यथादिष्टं कुरुते)

गागाभट्टः—भारतेन्द्र तव महार्हसभाजनया परितुष्टानामस्माकमेतदेवास्ति परममाशास्यम् । यदयं

स्वातन्त्र्यभावज्वलिताहुताग्नौ द्विषद्भिर्भिर्जनता प्रतर्पणैः ।
निर्वाहितो मन्त्रिपुरोहितादिभिः साम्राज्ययज्ञोनितरां समृद्ध्यताम् ॥९

शिवराजः—अथ सभाजय मम साम्राज्याधिकारपदमण्डनानष्टौ प्रधानमन्त्रिणो महार्हरत्नवसनाभूषणैः ।

कोषाध्यक्ष—तथा । (इति यथादिष्टं कुरुते)

शिवराज—और इसके बाद कोषाध्यक्ष, एक लाख मुद्राओं द्वारा आचार्य को, चौबीस हजार मुद्राओं से पुरोहित, पाँच हजार मुद्राओं से प्रत्येक ऋत्विजों, और बहुमूल्य वस्त्र एवं आभूषणों से सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सम्मानित करें।

कोषाध्यक्ष—ठीक। (आदेशानुसार करता है)

गागाभट्ट—भारतेन्द्र आपके बहुमूल्य उपहारों से सन्तुष्ट हम लोगों की यह शुभकामना है। कि तुम्हारा यह

स्वतंत्रता की भावना से ज्वलित और उसमें शत्रुओं की आहुति, प्रजाजन के साथ साहाय्य, मंत्री और पुरोहितों द्वारा सम्पादित साम्राज्यरूप यज्ञ सदा, सर्वथा समृद्धि को प्राप्त हो।९

शिवराज—अब हमारे साम्राज्याधिकार-पद की शोभा-स्वरूप आठ प्रधानमन्त्रियों को बहुमूल्यरत्न, वस्त्र और आभूषणों द्वारा सम्मानित करो।

कोषाध्यक्ष—ठीक है। (आदेशानुसार करता है)

प्रधानमन्त्री—दिष्ट्येदानीं सम्राट्पदवीमधिरूढं महाराजमभिनन्द्याशास्त एव भृत्यवर्गो यत्

प्रबलकुटिलविद्विषां विभेत्ता प्रतिदिनमेव तवैधतां प्रभावः ।
तपनकुलमणे सपर्ययेदं भवतु सदा सफलं च जीवितं नः ॥१०

शिवराज—अथ बहुमानेन संमानयस्व मे विजययशोभागिनो वीरान्वरान् ।

हुत्वा देहं निजं ये समरहुतवहे प्रस्थिताः पुण्यलोका—
स्तेषां वीरोत्तमानां समुदितयशसामन्वये ये प्रसूताः ।
बुद्ध्युत्कर्षप्रतापप्रमथितरिपवो ये पुनर्नीतिदक्षाः
सर्वे ते राष्ट्रभक्ता नृपकुलविभवैर्माननीया यथार्हम् ॥११

कोषाध्यक्ष—तथा । (इति राजशासनमर्पयति)

शिवराज—मन्त्रिन् सभाजय विदुषो विप्रवर्यान् नियतवार्षिक-

प्रधानमंत्री—भाग्यवशात्, सम्राट् पद पर आसीन महाराज का अभिनन्दन कर ये सेवक चाहते हैं कि

प्रबल और कुटिल शत्रुओं का नाश करनेवाला आपका प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ता रहे और सूर्यवंश के मणि आपकी सेवा में हमारा जीवन सदा सुखी और सफल रहे ।१०

शिवराज—विजय यशभागी श्रेष्ठ वीरों को श्रेष्ठ सम्मान प्रदान करो ।

रणभूमि में जिन लोगों ने अपने शरीर की आहुति देकर पुण्यलोक को प्राप्त किया उन श्रेष्ठ वीरों के कुल में जो उत्पन्न हैं, जिन लोगों ने अपनी बुद्धि के प्रताप से शत्रुओं का नाश किया, जो नीति-निपुण हैं वे सभी राष्ट्रभक्त राजकुल वैभव से यथायोग्य सम्मानित किये जायँ ।११

कोषाध्यक्ष—ठीक । (राज्यशासन समर्पित करता है ।)

शिवराज—मन्त्रिन् विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिए वार्षिक वृत्ति

वृत्तिवितरेणन । मा सीदत्वस्मिन् मम धर्मराज्ये कोऽपि स्नातको द्विजोत्तम । यतस्तदधीन एव सद्विद्याप्रचारः ।

मन्त्री—तथा । (इति विप्रेभ्यो राजशासनान्यर्पयति)

शिवराज—सचिवा येवा नानाधर्माणां लोकानां संग्रहार्थमनेकवीरबलिभिर्मया समुपार्जितमेतद्धर्मराज्य तान् सर्वानपि वसनान्नपानादिभि सन्तुष्यानुरञ्जयत । यतस्तदनुरागपरवशा ह्यस्माकं साम्राज्यसंपद् ।

सचिवा—तथा । (इति निष्क्रान्ता)

प्रतिहार—(प्रविश्य) विजयतां देवः । दिष्ट्या संप्राप्ता अत्र धीचरणाः ।

शिवराज—शीघ्रं प्रवेशय अत्यन्त महानुभावम् ।

प्रतिहारः—तथा । (इति निष्क्रान्त)

नियत कर दें । हमारे धर्मराज्य में कोई भी विद्वान् ब्राह्मण दुखी न रहे । क्योंकि उन्ही के अधीन सद्विद्या का प्रचार है ।

मन्त्री—ठीक । (ब्राह्मणों को राज्याज्ञा प्रदान करता है)

शिवराज—सचिवगण जिन नानाधर्मावलम्बी प्रजाजनों के लिए अनेक वीरों की बलि देकर मैंने यह धर्मराज्य प्राप्त किया है, उन सबको अन्न वस्त्रादि से सन्तुष्ट रखें, उन्हें प्रसन्न करें । क्योंकि उनके अनुराग पर ही हमारे इस साम्राज्य की सम्पत्ति आधारित है ।

सचिवगण—ठीक है । (चले जाते हैं)

प्रतिहार—(प्रवेशकर) विजय हो देव । भाग्य से श्री (गुरुश्रेष्ठ) आ गए हैं ।

शिवराज—उन देव पुरुष को शीघ्र ले आओ ।

प्रतिहार—ठीक है । (निकल जाता है)

(ततः प्रविशति रामदासः)

शिवराजः—(सर्वैः सहोत्थाय) एष श्रीचरणप्रसादसमुपार्जित-साम्राज्यवैभवः शिवराजोऽभिवादयते । (इति पादयोः पतति)

श्रीरामदास—वत्स, उत्तिष्ठ । मम वचसि सर्वथा वर्तमानस्य तव सकलमप्यभीष्टं मया तपःप्रभावात्सम्पादितम् । अथ किं ते भूयः उपकरवाणि ।

शिवराज—भगवदनुग्रहेण न मे किमपि भद्रमवशिष्यते । तथापीदमस्तु भरतवाक्यम् । यदस्मिन् मम भारतवर्षे

मोदन्तां नितरां स्वकर्मनिरताः पर्याप्तकामाः प्रजाः,
एधन्तां नयविक्रमाद्भुयशसो लोकप्रियाः पार्थिवाः ।

(उसके बाद रामदास प्रवेश करते हैं)—

शिवराज—(सबके साथ उठकर) श्रीचरणों के प्रसाद से साम्राज्य वैभव को प्राप्त करनेवाला यह शिवराज आपको प्रणाम करता है । (पैरों पर गिरता है)

श्रीरामदास—वत्स उठो । मेरी आज्ञा का सदा पालन करनेवाले तुम्हारे सभी अभीष्टों को मैंने तप के प्रभाव से पूर्ण किया । अब तुम्हारे लिए और क्या कर दूं ।

शिवराज—भगवन् के अनुग्रह से अब मेरे लिए कुछ भी शेष नहीं है । तथापि यह भरतवाक्य रहे । कि मेरे इस भारतवर्ष में

प्रजाजन अपने कर्म में निरत रहें, अपने अभीष्ट की पूर्ति कर सदा सुखी, प्रसन्न रहें, लोकप्रिय राजागण अपने विक्रम और नीति नैपुण्य से यशस्वी हो समृद्ध होते रहें । बादल समय पर जलवर्षण कर धान्यों

सस्यानां च समृद्धय जलमुच सिञ्चन्तु कालेरसां
सप्ताङ्गप्रकृतिप्रकर्षरुचिरं राष्ट्रं चिरं वर्धताम् ।।१२

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

साम्राज्याभिषेकनाम

दशमोऽङ्कः

छत्रपतिसाम्राज्यं नाम नाटकम्

समाप्तम्



को समृद्ध करें–इस प्रकार सातो अंगो से पूर्ण प्रकृति के सुन्दर विकास से राष्ट्र सदा बढ़ता रहे ।।१२

(सभी निकल जाते हैं)

साम्राज्याभिषेक नामक

दसवां अंक समाप्त

छत्रपति साम्राज्यम् नामक यह नाटक समाप्त



